

किसानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार किया गया एवं उसे कुछ कानूनी अधिकार भी प्रदान किए गए। बिजोलिया का यह सफल और धानदार किसान-संस्थाग्रह पब्लिक जी की कृति था। उन्होंने किसानों के बीच एक कर उसे बनाया और सफल बनाया। बिजोलिया के किसान पब्लिकजी की सेवाओं को धान भी याद करते हैं और उनकी स्मृति में अपना छिर झंडा से झुका लेते हैं।

बिजोलिया के किसान संस्थाग्रह के विमोचन में ही पब्लिकजी अपने सहीद स्वर्गीय गणेशचंकर जी बिजोर्जी के सम्पर्क में आए और दोनों की मित्रता घंट तक बनी रही। बिजोलिया के किसानों ने बिजोर्जी जी को राखी भेजी थी और बिजोर्जी जी ने बिजोलिया के किसानों की कष्ट-बाधा और आन्दोलन को अपना पत्र 'प्रताप' द्वारा नियमित प्रसिद्धि प्रदान की। उसके पत्रस्वरूप उन्हें राज्य का कोषभाजन बनना पड़ा और 'प्रताप' का राज्य में प्रवेश निषेध कर दिया गया। किन्तु कोई भी स्वाधीनकेता पत्रकार म्याय का पत्र लेने से कैसे विरक्त हो सकता है? बिजोर्जी जी सचमुच एक स्वाधीनकेता पत्रकार थे।

बिजोलिया के समीप ही केनू एक और सामन्ती ठिकाना था। वहाँ के किसान भी पब्लिक जी और राजस्थान सेवा संघ के नेतृत्व में सामन्ती शासन के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। वहाँ राज्य ने सनभौटे के बजाम हमल का आशय दिया। राज्य ने किसानों के एक मजमे पर पोलियाँ बसाईं। दो किसान झूठे हुए और संकड़ों को गिरफ्तार कर लिया गया। यह सब राज्य के एक संभव अधिकारी की देख रेख में हुआ। पब्लिक जी इस घाड़े बछ में किसानों को घेरेला नहीं छोड़ सकते थे। वे किसानों को हिम्मत देने के लिए उनके मध्य पहुँच गए। राज्य ने मौद्रिक देखरेख पब्लिकजी को गिरफ्तार कर लिया। उन पर एक विशेष न्यायालय के सामने राजस्व के घाटा में मुआहमा बताया गया। यह एक ऐतिहासिक मुकद्दमा था। पब्लिक जी ने न्यायालय के सामने एक विन्यून बयान दिया था। उसमें उन्होंने रियासतों में ब्रिटिश ब्रुटनीति के गड्ढाओं का पर्दाफाश किया था और रियासती प्रभुता के हमल शोषण और उल्टीझग की एक नयी तस्वीर लीचकर रख दी थी। राज्य के उच्चतम न्यायालय से निर्दोष निष्कर्ष होने के बाद भी पब्लिकजी को महाराणा की विधिवत आज्ञा से जेल में भेज दिया गया। उन्हें पौब बन तक उदयपुर की जेल में रहना पड़ा। दण्ड सत्रिक में पब्लिकजी ने ईर भारे साहिरा भी रचना की। यह 'प्रज्ञाद बिजय' नाम्य भी उनी नाम की

रचना है। सन् १९२८ में जब यह जेल से रिहा हुए तो उनका पारा साहित्य राज्य ने अपने पास रोक लिया था और उनका मेवाड़ में प्रवेश निषेध कर दिया था। स्वतन्त्रता के बाद ही जेल में लिखा हुआ साहित्य उन्हें वापस मिल सका और यह सब उनके निधन के बाद धीरे-धीरे पाठकों के सामने आ रहा है।

उषमपुर जेल में रिहा होने के बाद पब्लिकरी ने प्रखिल भारतीय देशी राज्य सोक परिषद् की प्रकृतियों में हिस्सा लेना शुरू किया और यह उनके उपाध्यक्ष चुने गए। कांग्रेस ने शुरू से ही अपने को देशी रियासतों के सामने नहीं से प्रस्तुत रखा। उनके नेताओं का यह मानना था कि वायस को एक समय तक ही मोर्चे पर आनी पण्डित केन्द्रित करनी चाहिए। अगर अंग्रेजों से नियंत्रित किया गया तो राजा-महाराजा अपने आप ठीक हो जाएंगे। किन्तु पब्लिकरी और दूसरे रियासती नेताओं की मान्यता इससे भिन्न थी। उनका कहना था कि यदि रियासतों की संपूर्ण छोड़ दिया गया तो अंग्रेज राजाओं का उपयोग भारतीय स्वतन्त्रता के विरोध में करेंगे। अगर रियासती जनता संगठित और जागृत होगी तो स्वतन्त्रता का पक्ष पुष्ट होवा और राजा-महाराजा राष्ट्र विरोधी बन न आता सकेंगे। प्रजा का दबाव उनको पक्ष भ्रष्ट न होने देना। पटनाओं ने इस मान्यता का प्रोत्साहन ही निष्ठ किया। उन समय कांग्रेस ने रियासतों में अपनी धामाएँ कायम करना स्वीकार नहीं किया किन्तु पब्लिकरी और दूसरे रियासती नेताओं के अनुरोध पर सन् १९२० में रियासती जनता को कांग्रेस ने प्रतिनिधि बनने का अधिकार दे दिया। रियासती जनता का अपने राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई स्वयं ही लड़नी पड़ी। परन्तु ही कांग्रेस की वरिष्ठ महानुमुद्रि उनके साथ थी।

राजस्थान सेवा संघ के सम्मेलन में यहाँ ही चर्चा करना प्रशासनिक नहीं होगा। जिस प्रकार स्वर्गीय गोपाल कृष्ण अंगरे ने राष्ट्र के लिए धात्री का महा का प्रथम देने वाले कार्यकर्ता मुगल करने के लिए भारत सरकार नमिति और स्वर्गीय लाला लाजपत राय ने लोक नरक नमिति जमी संस्थाओं की स्थापना की थी जैसी ही पब्लिकरी द्वारा स्थापित यह संस्था भी थी। इसमें राजस्थान का आक्रमण मेरा का उन अपने वाले कार्यकर्ता दबदु हुए थे। यों कहना चाहिए कि यह कार्यकर्ताओं का एक नया कुटुम्ब ही स्थापित हुआ था। उनमें कार्यकर्ताओं में व्यक्तिगत सम्पत्ति और निजी स्वार्थों का एक उच्च ध्येय के लिए निराश्रित कर दिया था। यह देश के लिए काम करने वाले नागरिक और पण्डित कार्यकर्ताओं का संस्था थी और उनकी प्रतिनिधियों ने मारे

राजस्थान को हिला दिया था। स्वामीय प्रजापण्डितों के प्रतिपक्ष में जाने के पहले राजस्थान के जिस किमी हिस्से में भी कोई धान्योत्पन्न उत्पन्न चाहे वह सिरोही का भीष धान्योत्पन्न हो चाहे बुंदी का किसान धान्योत्पन्न धीर चाहे घसवर में नीमूबाबा का हत्याकाण्ड इस संस्था के कार्यकर्ता पीढ़ियों का पक्ष लेने धीर उन्हें पड़ुत पहुँचाने के लिए सबसे धाये होते थे। धान्य वह निष्ठा धीर सगन कार्यकर्ताओं में वनविज्ञ ही दिखाई देती है जो इस संस्था के कार्य कर्ताओं में भी। राजस्थान का जन जागरण में पण्डितजी धीर राजस्थान सेवा संघ का योग्य कमी मुलावा नहीं जा सकता।

पण्डितजी का लेखक धीर कवि एक उच्च विद्या से प्रेरित था। उन्होंने घनेर पर्वों को जन्म दिया धीर उनका सचमतापूर्वक सम्पादन किया। उन्होंने सन् १९२० में वर्षों से स्वर्गीय सेंट बयनापासजी बजाज के सहयोग से 'राजस्थान केमरी' साप्ताहिक निकाला। उनके बाद धनमेर से 'भौषीय राजस्थान' को जन्म दिया जो बाद में 'राज राजस्थान' बना। उनके बाद उन्होंने धनमेर से ही 'राजस्थान महेर' निकाला। वह राष्ट्रीय पण्डित निर्दुष्य धीर धनपा नाम से काव्य-रचना करत थे। उनके काव्य में भावों की उद्धान रूप भक्ति, स्वयं-विनोद धीर धामिकता के वर्णन सहज ही होते हैं। उनके लेखों धीर निबंधों की प्रीति देनी ही वनती है। उन्होंने इतिहास की विषयकर गण्य राज्यों के इतिहास की योग्य-योग्य का भी बड़ा काम किया है। साहित्य की का साधना उन्होंने की है वह केवल मानव संस्कारों के परिष्कार के महत् हेतु से प्रेरित होकर। दगतिग उनके साहित्य का स्वामी महान है।

पण्डितजी के देह को राष्ट्रीय भण्डा पात्र दिया है। केवल इस पात्र के कारण ही वह साहित्य के धनमेर होने चाहिए। धनमेर-जैन में बग्न सत्यापही बनी जब यह भण्डा पात्र जाने के तब उनसे भित्ती प्रेरणा पाते थे। जलकी से प्रथम पण्डित्या प्राण भित्ती मले ही यंत्राणा कर भण्डा न यह नीचे मुकागा' धनमेरतन मम में धान्य भी सदा ही बूझनी रहती है। उनके काव्य में किउनी हड़ता धीर जोर था उनका एक नमूना यहाँ देने का सोच हम संवरण नहीं कर सकते। कवि राजस्थानियों का धाहान करता है धीर किर जननी धीर से पुत्र प्रतिज्ञा भी करता है—

देताम समझ कर देशियों को ही गया धान्यार्थिक
के भी न यदि हमारी धिनगी मरम देह हमार्थिक।

मूँसे बने गाने पढ़ें, पक्कान मिलकर गाएँगे-
 घामल न हुआ घाम पल या पयाम बिदाएँगे ।
 क्या बिजु के रासल हम मय का प्रसन्न निभाएँगे-
 हम देल हिन यमराज मे भी मुक्ति हाथ मिलाएँगे ।
 तिम तिम घबर कटना पड़े निर्भय बड़े कट जाएँगे
 पर बीर रात्रिपान का हथियार न नाम डुबोएँगे ।

पबित्रजी राजस्थान की जन जादुनि के सप्रसूत थे । उन्होंने राजस्थान
 में ज्ञानि की ज्ञानि को प्रसन्नित किया । बहु ज्ञानि धीम-धीम प्रसर होती
 गई और ज्ञान में ज्ञान्य और ज्ञान्यार पर ज्ञानि मामन्नी ब्यवस्था को भ्रम
 करके हो गान्त हुई । नमक सरवाग्रह के समय बहु राजपूताना मध्यमाल
 और मजमेर-मरवाहा प्रान्तीय बाण्य बमरी क ज्ञान्य व और इन्दी नाते बहु
 बुबारा जेव गए । जेव में उन्होंने एक कविता लिखी थी— कुछ उजबक बंदी
 घाल हूँ जो हाथ्य बिनोद का उत्तम नयूना है । पबित्रजी ज्ञान प्राग्मिक
 जीवन में बड़े ज्ञानिक थे । गीता के निष्ठाव बमयोम में उनकी गहरी ज्ञान्य
 था । धीरे धीरे उन पर माकनबाद का प्रभाव गहरा हाव मया था । बम ज्ञान
 ज्ञानाबाद को बहु ज्ञान्य मनात्र ब्यवस्था स्थापार करने प ।

देव ज्ञान्य ज्ञान बिजु मजमेर का बाण देव म जिन परिस्थितियों
 का निर्माण हुआ उनक अनुभूत यह ज्ञान का बना नहीं पाव । उनकी सेवाओं
 की आ स्वीकृति मिलनी चाहिए थी बर उन्हें मही मिली और ज्ञानिक उनका
 मन बिजुणा म भर मया था । बाण मे बाई गान बरं पूव ज्ञान्य में एक
 मापारण्य-मा बीमारी क बाव ७२ बर की ज्ञानु में उनका देहान्त हा गया ।
 मृत्यु मे पहले ज्ञान्य के पास कार्यज्जाओं क ज्ञान एक मापना माप्य और
 माक्षित प्रकाश केन्द्र स्थापित करने की उन्होंने योजना बनाई थी कारण बहु
 निश्चित होने काव ब्यक्ति नहीं थे । मयात्र का कुछ न कुछ बन उता चाहते
 थे । बिजु उनकी मृत्यु मे उनके जीवन काव का बीज म ही मयात्र कर दिया ।
 देव की मजमेर और मज मयात्र की रचना के ज्ञान ज्ञान्य और ज्ञान्यारों
 मे मार्ग मेने बाते एक उद्भूत याज्ञा का जीवन-दीन बुद्ध मया और उनके बाद
 बभी पुरी न होन बापी रिज्जा हा एव रह र्क है ।

पबित्रजी के जीवन का यह महित परिषय दाह ज्ञानिक दिया आ ज्ञान
 है बि पाण्य ज्ञान बाण्य के मेणक के ब्यक्ति में मया ज्ञान परिचित हा

मर्ब पाया । उनके राजनीतिज्ञ ने उनके कवि-मन के प्रस्फुटन में निरन्तर बाधा डाली ।

यहाँ मैं केवल उनके कवि-रूप की खर्चा करना चाहता हूँ । स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों को 'राष्ट्रीय पत्रिक' का परिचय देने की आवश्यकता नहीं । उनकी कविताएँ उस समय नहीं भावना का नहीं चेतना का प्रतीक बनी हुई थीं । लेकिन उनका कवि अपनी बरमस्वति में पहुँच सका 'प्रज्ञापर विभव' में ।

मैं ईरान हूँ कि यह पुस्तक रची जाने के समय तीन सताब्दियों बाद जब प्रकाश में आ रही है । वो सताब्दियों तक तो वह उदयपुर राज्य के कारागार में कैद रही थीर उसके बाद पत्रिक जी अपनी व्यस्तताओं में उसके प्रकाशन की मुविधा न जुटा पाए । जब भी वह प्रकाशकों के उत्साह के कारण प्रकाश में नहीं आ रही है बरन् इसका ध्य पत्रिक जी के छन स्नेहियों छात्रियों एवं भक्तों को है जो उनकी कौशिल्य रत्ना का प्रयत्न कर रहे हैं ।

पुस्तक उदयपुर कारावास में रची गई है । शायद इस प्रकार के व्यस्त साहित्यिक राजनीतिज्ञों के लिए कारावास ही ऐसा स्थल है जहाँ वे अन्य विन्ताओं से मुक्त होकर साहित्य सृजन में वसतिष्ठ हो सकते हैं । बंड-काम्य का आचार सुगमुर-संग्राम की सुपरिचित पौराणिक कथा है—हिरण्यकशिपु [हिरण्यकश्यप] का देवलोक पर आक्रमण उसका उत्पाठ भवानक संग्राम अंत में देव-पक्ष की विजय थीर हिरण्यकशिपु का पनाम उसकी बर्बती रानी का देव-सेना के हाथ में पड़ जाना थीर इसका उसको सुगुपेय जिसके प्रभाव से वासान्तर में रानी के बर्ध से जन्म लेकर प्रज्ञापर ने समुद्रों का उद्वार किया ।

कथा का चयन करने में पत्रिक जी ने काफी मूक-बुद्ध से नाम लिया है । उसके विकास में उन्होंने आसुरी साम्राज्यवाद का उनके पापविक्रम समार का नाटियों की दुर्घटा का देशों के सत्य-साहिष्ठा ब्रम का थीर जारी समता आचारित विरुध के स्वप्न का जेमा बिज लीखा है अपने उन्हें मात्र कवि नहीं रहने दिया बरन् भविष्यदृष्टा बना दिया है थीर उन्हें राष्ट्रीय करियों की सर्वांगणी पीठ में आ बैठाया है ।

रचना की नवन बड़ी विवेकता यह है कि पत्रिक जी बातावरण से निपटत होकर न तो महाब्राम्हि की आवाज लपाने है थीर न मात्र दिनी राष्ट्रीय आत्मवक्त्र के साथ चलने का बहने दते हैं । उन्होंने जिस साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकान को आनाया है थीर समता आभि नवा न्याय पर आचारित

जिस नए विरह की बख्शना की है उसने हम रचना का देख तथा काल की सीमाओं से ऊपर उठा दिया है। यही कारण है कि आज तीन सप्ताहों बाद सचका प्रकाशन होने पर भी, भले ही उसका छद्म-विम्वार एवं भाषा कुछ पुरानी लगती हो ऐसा धामान होता है कि पत्रिक की धाज भी प्रबलित साप्ताहिकों को युद्ध के लू कबार पत्रों की जमी बग से समकार रह है और उसका प्रतिकार के लिए सत्य तथा प्रहिता का बीरतापूर्ण धारण हमारे सामने रख रहे हैं। हम सम्बन्ध में मोमिकता बरतते हुए भी वह देश की प्रमुख गायीबाही धाज से कहीं बिलग नहीं होने—

मही बीरता है बिबुधो ! बरों का बय करने में
है बीरत्व सत्य पर निभय डे हुग मरने में !
सच्चा बिबुधो है मैं वह बयी होकर मैं माना है
प्रसूत वह मैं बिना भूक निज प्रण पर भिट जाता है।

कतिगोत्रर सप्ताह की भीति नद की बिस्ता धाज से महाममरों से बीडित धाजित मानवता का बिस्ता बन जाती है—

युद्ध नहीं कुछ धर्म-कार्य है हिता नहीं प्रयति है
स्वातंत्र्यधिन भुरदार्य ही बय उगकी अनुमति है।

इसी युद्ध के बिन्दु समरन नवार की गारियाँ—मायाया बहनों के बरिनयों—का स्वर देती हुई हिरम्यबिगु का गाना बहती है—

धमुर-महिनी बानी 'गुग्गाव ! युद्ध का है मर हा बिबाग
कि ररता प्राणिमात्र पर प्रेम, माय है धम और परिहाम !
समर बन होता मरा प्रमा ! युद्ध कयता मैं गिनती पाय
हय ईयाँ मानव का मरा मानना बगुगावर का धाज।"

यह संयुक्त राष्ट्रबंध की बहना बगिन कुछ बहगानि के रास्ते में—

निदधय हुआ मही देगों का धामनगु भिजबाना
एक जगत् गर राष्ट्र-ममरों के प्रनिनिधि सुमराना !
बिन्न भिन्न भाषा धाजनि बाने बिभिन्न बागों का
भिन्न-भिन्न धारहारों बाने भिन्न-भिन्न बाना के
राज्य प्रमा मरके प्रनिनिधि बिन्न बीर धरमयायी
मरने भिन थी बिन्न-भाजि की नृपन भीति बाना।

घौर घंत में हम्मे के सपनों में गए विषय का स्वप्न देखिए—
 फिर, इस हृदय-हृदय जग में सुख का समुद्र सहारा
 फिर, क्षण पर बन्धु-भाव की विमल चञ्चिका छाप ।
 फिर, मरुतल कुबिरा कुंभों सिमल पुष्पों से भर जाएँ,
 फिर, कोकिल 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की रागिनी सुनाएँ ।
 फिर, बस की पूजा उठकर हो सरय म्हाय की बर्षा
 फिर, घर-घर में स्वास छोड़ हो व्यक्ति-भक्ति की बर्षा ।

बाद । यह रचना समय से प्रकाश में आ गई होती । कौन कह सकता
 है कि तब हिन्दी और विश्व साहित्य को पथिक जी थे हमसे भी खेच रचनाएँ
 न मिली होती ।

हेनक हिन्दुस्तान
 गई हिन्दी ।

द्वारबेभु

प्रथम सर्ग

दीप्प का प्रमाण था प्रमाणपूर्ण पक्षों से
चिरी हल्करी थी क्यों रनि हटवा रही
गली मकनों के चारों ओर मये उड़ानों में
थी मग्न मग्नित गमक मग्न थी !
छरण के प्रम-वणी मुमुणी प्रमा थी मुन
विमुमुनों के बंद दुदगुरी जमा रही
भीने भीने कर कृमुओं के मुग पर पर
घाट हँसती थी थी थी बिचको हगा रही !

देन इन छरण प्रमा की घटनविधों की
मुख कृत्रि भी थी या मुदित दुसका रही
माना बग-बादिली बदिन्दरा हयक पर
देन रति-मृग ही न धनों म जमा रही !

या स्वभूमि माय्य की निशा का अन्त भावा देख
पुष्प-पक्षि पुस्तक पराग हो झुटा रही-
मनवा कमल राशि देख सम-नाथ नेत्र
कोते सर में हो हास्य हिनोरें उठा रही ।

ऐसे ही समय प्रातःकाल के नयन-सम
बलात् एक सैनिक पुरी की घोर घाटा बा-
कमी पीछे देखता बा कभी निज धूल-भरे
बदन वह-बाहुओं की धूल झाँकाता बा ।
बहाता कभी बा चौक पैरों की प्रगति कभी
हटि नमस्कुची कुर्ग की रिखा उठाता बा-
कभी किसी जितनाधिभूत हुप्पा धूल जाता—
मानो यह भी कि जिस घोर बसा जाता बा ।

ऐसा ध्यान-मग्न बा कि द्वारपाल के प्रह्वाम—
प्रसन्न भी न सुने कुल बाँधे बसा जाता बा
ध्यान ही न बा नि बन है या स्मृतिपुरी है यह,
धा रहा बा कोई सामने या नहीं घाता बा ।
बसा बा रहा बा राजमार्ग के किनारे बिनु
नश्यना का स्वप्न उसे जाने क्या रिसाता बा
जाने जगदीश ही कि पैर भी 'पबिक' कंठे
टीक-टीक बाँधे हुए जब से बड़ाता बा ।

देगते-ही-देगते सपन नुर-बीजियों में
पान्थ आम्बुषी तरंग ज्यों विभीन हो गया
राग भर के निष्ठ विविध मनोकृति रिखा
द्वारपाल घादि जो घबग्गे में डुबी गया ।

प्रज्ञाप विजय

मानो मूर्ख विधित विविध गुर चाप-धो को
मसी मीति देखने के पूर्व कोई बो गया-
या उड़ान मरे जाता पत्रि पहचानने के
पूर्व ही क्यों मूर्खित मिथुनों मध्य हो गया ।

इसी समय गुर-सदन की जन-नाजन-सम्मीर—
तुमुल बाध-ध्वनि से सकल बूज उठी प्राचीर ।
फिर क्षण भर पश्चात् ही दली समराङ्गण-
रक्त-यताका दुर्ग पर भरने लगी उड़ान ।

तत्क्षण सबकी दृष्टि दुर्ग की धार जा लगी
हृदयों में भय-रांकाशों की मीढ़ घा लगी-
सभी भये निज दृष्टि-बिन्दु से भय लयान
एवं धपने ही विचार को सत्य बनाने ।

मुरादनाशों की समा जगह जगह कुड़ने लगी-
धर धर में हम शत्रु की ही कर्चा छिन्ने लगी ।

जपर देवयल शृंग्यामिह्र का साज छोड़ कर,
विधित चंचल-चंचल नियत कृति नियम छोड़ कर,
संश्रित हो निज पक्षोत्तियों का साथ बनाने
धपने धरने अनुमानों की क्या मुनाज-

बल-बल मिल सब दुर्ग की घोर समोत्पुलक जल दि
ज्यों हों नदियाँ जा रही मिथु दिशा निज जल लिए

रम भर में गम्भीर-गम सुर-कान्ठार बम गया
पुण्या तक पर बुद्धिबन्धन धार बम गया
सत्य जानने की सबको पुन लयी हुई थी
सबही के मन में उत्सुकता लयी हुई थी ।

अकस्मात् जय घोष से गद्य-नीम गम हिन चठा
जिसे ध्वज कर मुरों का मुक्त परसिद्ध-वन घिस चठा ।

विषय तपस्वी-वेष मन्द बलि चरण चठा है
पवित्रता की प्रभा विद्यापीठों में फैलाते
कृपा-दृष्टि से मुखा-दृष्टि सबपर बरसाते
मठ होते मुर-धर-मुमना को दीप्त मुकाते—

‘दमा ! दमा ! की प्रतिष्ठा में मुहु मुसबाते हुए
बीस पत्रे बुद्ध-सहित निर्जर-वलि भाते हुए !

रम भर में मारी गम्भीर बाझूर हो गई
मानो सब उत्सुकता विमला बूर हो गई
प्रम धीर खड़ा है गवका हृदय भर गया
गति-वक्ति में मानो मन्द प्रभाद फिर गया !

सिंहासन के निरुद्ध या मुरपति महमा रुक गए
सम्मुखीन मुर-वक्ति के मिर आवर से रुक गए !

मन्त्रोत्पत्ति बँटने का ईश्वर धारण
यन-वर्गीर मृदु-रंग में बहने लगे नुगेय !

“देवगण ! निरुद्ध होके आग समोत्पन्न नुगेय का बह देव
कुमारों के मन्त्रोत्पत्ति, शिवाकर विपत्ति का मन्त्र !

बात भी है ऐसी हो मनु ! तनिक-सी भी करने से बैर
कटावित कर सकते हम न भाभी में कुछ हेरा-फरा !
व्यर्थ है परिचय देना तुम्ह 'दृष्ट कर' के धमुरों का भिन्न
कर पुछे है जो धपने घाय बसहिऊन कादय-बंध-पवित्र !

किर बही हिरण्यकश्यप मुपति साय से धमलित संन्य समूह
सजाकर कटिन समर के साज बना घबटावून सूखी-मूह
घोर की भीति रात्रि के समय घाज है सीमा पर घा बहा
घोर घब हनुपुटी की धार बना घाघा है सरवर बहा
इस तरह बल जिस मुरमरि-बून मुरों का था मैसा जुड़ रहा
घाज है वही धनय का चिन्ह धमुर इस का भण्डा उड़ रहा !"

आक्रमण की धरि के मुन बना मुकुटिया मुरमण की बड़ गई
फड़कने लगे घोष रद-नीति स्वन ही घोषों पर बड़ गई !
तीव्र हो बसी इशाम-गति मदन ज्ञान में कवित हो जल उठ
हृदय के स्थिरलम कोमल भाव भी समुत्त जित हा हिन उठे !
फड़कने हुए दीर्घ मूक-रज्ज स्वन ही धमि पर जाने लगे
घाघमण कर देन को स्वय करण माना प्रकसान मण !

घभीपति किर ज्ञान 'मुग्ध' ! व्यर्थ है बहना यह भी जान—
वि हिता रिजगन नर-आरा किसीके भी प्राण का धान
आदि है विनन धमिय-बुगद हमार निष्ठ मया में रहे
बीज में बल है न जो इन्हें टामन का इमन हा गई !
रहा है मुर-ममाज का गरा मुनिरिचन लज्ज विन उरवार
विन म माध्य नय न्यायन्य घामि का पंचाना धमिहार !

किन्तु प्रश्न है राष्ट्र की स्वतन्त्रता का आश-
भीषित रह सकता नहीं सोकर जिसे समाज ।

स्वतन्त्रता है प्राण सृष्टि के क्षुब्ध कर्मों की
स्वतन्त्रता है भित्ति भक्ति की स्रग्धों की
स्वतन्त्रता है जीवन का जीवन बेतन में
स्वतन्त्रता है घोषा की घोषा उपवन में ।

स्वतन्त्रता ही विश्व में है गुरुपथ ! गुरुपुर-मुद्रति
स्वतन्त्रता ही ब्रह्म है स्वतन्त्रता ही है प्रकृति ।

स्वतन्त्रता ही उल्लसि का पथ बिखलाती है,
स्वतन्त्रता ही सत्य-साधना सिखलाती है-
स्वतन्त्रता है जीवन को राष्ट्रीय बनाती
स्वतन्त्रता है कर्मों को करणीय बनाती ।

स्वतन्त्रता के साथ ही मनुष्य का मनुष्यत्व है-
स्वतन्त्रता ही सूर्यों को बेटी पद देवत्व है !

ओ जन धमका राष्ट्र-स्वरासन खी बैठे हैं
वे जीवित ही जीवन से कर जो सेते हैं-
परबलता-विष जन्में मिथता ही जाता है
नीति-मष्ट कर धुन बासता सिखलाता है ।

धीर्य प्रेम मानादि गुण फिर उनमें मिलते नहीं
सतिस-हीन घर में कभी स्मिष्ठ-सरोज धिमते नहीं !

ओ गुरुपथ परतर्ज होनए धनुर-मुपति से
तो समझो गुरु-धर्म उठ गया विश्व प्रकृति से
धनुर राज्य की भाँति गुरों को है फिर सिखा
ही पाएगी मुद्रित धनुर-वर्तन की दीगा ।

प्रह्लाद विजय

हिमा व्यसन विनाश सब निहित बनें सदा ही
धनुओं के धम्माय से काँप उठेकी गुर-मही !

जाएगा सबोस गुर-धनुषों को शिखसाया
कि है समुरगण में दस भू को स्वर्ण बनाया
और वह कि है उनके पितु परम्य अज्ञानी
व्येस बनेगा फिर उनका करता मनमानी !

भेद-भाव ब्रह्म-कर्म के गुर बन बैठे सदा
पापी पापों में पड़क पापिक पाएँ दमन !

घट-कहो, परब्रह्मा को स्वीकार करोगे ?
अथवा रण में धरि है लड़ते हुए करोगे ?
बन धनुषों के बाध करण उनके सोचोगे ?
अथवा विजयी हो बलिदेवी पर सोचोगे ?

देखोगे विजय देव की स्वतंत्रता जाती हुई ?
अथवा धरि की सैन्य को शोषित में गहाती हुई ?

क्या देखोगे गुप्त गुरपुर को घीम मुछाते ?
स्वदेव के ही बर के सम्मुख बर फेंकाते ?
क्या सुनों में पसी हुई है गुर-आवाज—
गुर-बुधों के सुमनों की सुन्दर आवाज—

होवी बिदय विषय की शत्रु सम्राट के निज ?
और देखने पहुँचे हृदय सब निर नीचे विज ?

नही ! नही ! के पोर न भुज गया आत्म
गुरपति फिर बने सब गुर-बुधों आत्म !

बन्ध की रमण ! यही तुम्हारे बन्ध बाध है
इस साहस के सम्मुख रिपु की क्या विधात है ?
हो बाधो रण-सज्ज भाव निज बस बिलसाओ
मरना कहते किसे सधु को यह बिलसाओ !

बलि-बीरों की हाक से भाव उपग्रह-गह हिन
पह-पह पर रण भूमि में शोरित नवियाँ बह बनें !

बिलसाओ बधवि है हम सब दान्ति-उपासक
नहीं चाहते बनना हम धीरों के सासक
बधवि हमसे हर गृहस्थ सबने स्वर्तन है
यह स्वतन्त्रता ही मुरपुर का राज्यधन है
तबपि तंत्र रसार्थ हम एकतन्त्र भरीन हैं,
है प्रयान्त उतने अधिक ही हम पुत्र प्रवीण है !

बिलसाओ जिस भीति हमें सहना भाता है
धीर सधु से भी बिलवर रहना भाता है
प्रेम-न्याय के सम्मुख हम जिस भीति पून है
सज्जनता के सम्मुख ज्यों हम चरण-भूम है
उसी तरह बामन के लिए प्रलय की ज्वाल है
स्वतन्त्रता के राज के दुर्धम बाल-कलम है !

बाधों सज्जर नगर-द्वार पर सब धावाओ
सावधान हो निज सेना का झूह बनाओ
मैं गुरुवर के महिन तुम्हारे साथ बधु ना
बुद्धा हैं परन्तु रण में तो प्रथम बड या !

भाव बैगना है समर में विमला मोहा बम
छबरदार कीई गुना भाव न पर मोना मिने !

प्रह्लाद विषय

उठो जन्मि लेने धमुर लेने सब संसार
कि है सब हम धान्ति-सर में भी प्रलय-धंगार !

उठो सिंह ज्यों घर ग्राकर सम्मुख छाता है
टोकर ग्रा जिस तरह सर्प पन फँसाता है
बड़ो जिस तरह पावस-पन बिरबर छात है
गजन कर पापाग हुबय तक दहनात है !

जाने मरि जाने जपत शीर्ष मुरों का मुत का
धान्ति प्रम ग नही बह हुषा नर्बका मुत का ।”

उठ सभी जय-धाय ग ब्रूज बया नम हग
भरा रोद रम प्रति-हुदय मानो निजे महेप !
बने सभी कर हग को प्रेम-महिम प्रविपाठ
जितने मुय उगनी मई मयी निजसन बाध !

बूमरे ही धग घर-घर में मुरामनाए
हैन-हैन निज पति-मुनों का मजाने सगी
बीर-नेप भूया तिरम्यागु बज-बम्म धानि
प्रम-प्युन-गुमनिन हुँ पामान सगी !
परिम प्रबण्ड धनि बागु धनु सोन
रानि कर कर रवन्द मुख मजान-बँबाने सगी !
बीर धर्म बीर बम बीर-मुस-वान धान
मान बनिदान की बपान पा मुनान सगी !

घाम-घाम में छिर गाए, कर म यह मन्दे—
“रजनना रतार्थ रम-ग्राम मज सब देप !”

देखते ही देखते विघात इन्द्रपुरी-द्वार
 बन्धि रज-सूर सुर-सैनिकों से मर गए
 दूरे युवा बाल बगहीन बसबाग सभी
 धाम रज-रंग रंगे व्यस्य से घेर गए ।
 धरत गज धाम पद्म-संघ का प्रवाह बला
 भीड़ देख भीत बाहुदेव भी ठहर गए
 चम्पक चमेसी कचनार कुन्द कलियों के
 दूध मरे मुख मानो नीति से उतर गए ।

धामए सुरज भी हियाभ रनेत कुंवरों की
 संघ्य लिए सैनिकों का साहस बड़ाते हुए
 सप्त सुव्यवासे ऐरावत-मंजारी में से
 मानो रौद्र रस की मुकुटि बरसाते हुए ।
 दूध चतुरंगिणी चमू ने कर दिया हड़
 प्यूर रज विविध पताकाएँ बड़ाते हुए
 नील नमोदेव मध्य मातों की छत्रए धनी
 मानो दीप-धियाओं की नीधियाँ बनाते हुए ।

गूब छठ क्षय मे यवन निरि-गुग मुहा
 जय चोपणाओं से मुखित मुर-बाओं की
 मर गई बुकनो म यवों की रंभीर प्यनि
 धृदनाद-मुठ भ्रमकार करवालो की ।
 कन्या की मुकुटि-मम कुटिल कमलों लिए
 लोचमरी गर्जना समर-मतवालों की
 मूमि नभ बायु को बँवाने लयी इन भाँति—
 मानो चमू चढ़ी हो प्रमय-यन-मातों की ।

या रहा या संम्य या वा आम्ही प्रवाह, उत्प
ही ये या के तार तर्कों म नृत्य करते
गज ये या बीड़ का रहे व गिरि-सम्य रह
ये या गुरों के सदन व उद्यान भरते !
उमड़े व नीर-धीर-निधि साध-साध या के
मेह धीर विष्णुवन मुग्ध हो विचरते
माने व या ज्ञानामुखी विज्ञा व समूह छिने
ब्रह्म म धनुर-बना के लिए व फिरने ?

छाई पुष्प लीग गिरि, बुलों के सहस्र होन
नये धीर वीर हृष्टि के समयमाने मये
स्वात बन्द हो बना विवृत वृक्ष-अली का भी
धूम्य धीर भूमि मानो मित मित जाने लगे ।
प्रातःकाल ही में सूर्य अस्त होयया चक्रोर
चन्द्रमा के लिए हृष्टि धूम्य में छिपने मये
भय भूमे निषाणाव भी नराज-अम्य लिए
छिटा निर मान पूव बिगा म बड़ाने मय ।

उपर जयन्त जयनपर-नित्र समुदाय के उपवन में
बया-गहिन बेटा या मरिचमय समयवन साधिन म
साग्य समीरलु साग्य करुणों में पुष्पों के परिमल से
मनिस पुहारों की शीतलता से अग्रिबा विमल से
लीनस धीर सुषण्डित बन दण्डि धामग्र बड़ाना
दृप्त रहा वा अन्-रिमयी के दुःखुदी बसाना ।

जयन्त बैठा गृह-यात्रा की शार्ते सुना रहा था
 प्रायः कब किस बिचि सुरपुर जसना यह बता रहा था ।
 बता रहा था कितने बाहुन उनके साथ जसने
 कहीं-कहीं रुकना होया सब कितने बिचम जसने !

कौन कौन से शर्तनीय जस ने पप में देखने
 किस-किसके सम्मान्य प्रतिधि बनना स्वीकार करने ।

जवा पड़ी-पड़ी छवि-स्वाधि भुग बार-बार
 देख भागो जन्म को कुक्ष्य टहल रही थी
 कभी करली थी पति से घसल कभी मूर्ख
 मन्त्रों के मातृमर्त्य पर मुकता रही थी ।
 दीप तब जगमुख धरते पतंगों पर
 कर-कर छप होय देव का जवा रही थी
 कभी मुल खोलती थी बिजन खलती थी कभी
 कभी धोंगड़ाई सेती भागो जससा रही थी ।

ऐसा ही समय भीति भरे नीक्य-जम भागो
 नम रम राम में ही बिप बीजन के सिंग
 देव-जमा प्रगित भुगेन्द्र-जग मिष्ट हूत
 हूत धामे के एक सभी न समाचार दिए ।
 "यही बुलाभा उमे कहा जयन्त ने सत्वर,
 धीर हूत था ही गड़ा हुआ तिर मल किन
 पवित्र से ज्योम पड़ने लगा जयन्त जवा
 देगने नवी धराक बिम्बनामिभूत-हित ।

उपर लया क्यों क्यों जयन्त सम्बाध पन के पड़ने
 त्यो-त्यो सवे भाव नव उनके मुख-मण्डल पर घिरने !
 पड़ते-पड़ते अकस्मात् क्षमपूर्वक धरि का धामा
 तटस्थ मुर-धामों पर निश्चय बल्योचार मन्नामा !”

कभी शोभ मे कभी चूणा सं उसवा मन भर जाता
 कभी चढ़ाता मुहुर्ति कभी बर बघनों धपर दबाता !

देव देव यह जया-हृदय मे उम्मुग्धा बहनी थी
 रह-रहकर प्रगता की मन में धीधी-मी बग्गी थी ।
 किन्तु न होता था साहस कुछ जयन्त न कह्य का
 समझ रही थी निश्चय कुछ कारण है बुर रहने का ।

इसी समय मुर-गति-अग्रज ने ऊँची हट्टि उगाई
 किन्तु न थी यह वह विगने थी शशि का हँसी मिलाई !

भरे हुए थे हममें मूलन विविध भाव मूलन क
 चूणा शेष क समित लाभ के मन की उचल-गुथन क ।
 स्निग्ध भावना मुग्ध भावना हँसी हँसाने वाली
 बहु परिमल-मी हट्टि हृदय-धनि को उममाने वाली
 सब वे ही थी फिर भी थी सबमें कुछ मूलन लागी
 मधु के घागे क्यों रापी ने वो सी हो मन् व्यापी !

घस्तु छिर अभी कृण जया का जयन्त न गमभ्या
 मुनकर जया-हृदय में भी क्यों शेष पन्न धा द्या ।
 बाज-मूर्ज-भम तमक उगा बर हविग रमन-मुग्ध शण्ड में
 दमक उगी धामा दामिनि हिम गिर के धुबि प्राणल में ।

जयन्त ने छिर चर मे मेगा की नव गति विधि जामी
 धीर स्वयं भीषे मन्नांगरु में जादे की टानी !

घटे अचानक मनो में दोनों के कुछ भाव
 किन्तु मिरा को या कहीं यह स्वीकार विभाव ?
 बाग़ी-मत फिर हो रहे, यों दोनों इन साथ
 विविध दृष्टि ही में दिया हो क्यों नुन हृद बीच ।

अन्त में साहस करके जया लगी बहने निश्चय ही भाव
 घापने यह बीरोचन पत्र ठान है एकसी येरी बात !
 हो क्या थाज जया का प्रेम भाव कृतकृत्य प्राप्त कर मान
 करते निश्चय यह प्रण मरण अन्त जन के रसक संगवान !
 अन्तर्गत रहे घाप निश्चय जानती हूँ मैं भी निज बर्म
 एक ठे लैना पनि-अनिमोव अहण कर लग बार तनबर्म !
 विभागा जय को अचना है न मारियाँ ममर भूमि के लिए
 भूमि गिन्ते उनके घर नहीं बिना घर का हृद-सौख्य पिए !
 और यह न हो तो मुझे ज्ञान है विद्यामानक अन्तिम बर्म
 जलद विधि-विधि जाना पनि मय हमारा है साधारण बर्म !
 कौन है जो इच्छा विपरीत कर सके साथ हमारा बर्म ?
 प्रेम के पक्षे रोग पर चढ़ा सके इतिम जीवन का रग ?
 कष्ट मर्याद यह करते हुए जया न पति-पद किया प्रणाम
 अक्षिप्त हूँ अक्षय में भी कहा "करते सब शुभ लीला घाम !
 न चिन्ता करना कुछ भी प्रिये मुरों की निश्चय ज्ञानी विषय
 सत्य के सम्मुख रिशती हैर टहर नरता है निश्चय अन्त !
 अन्तु घर बिदा करो भार्या लड़ा है रग को मिए लैवार
 निरन्तर रोग बजाते हुए, कर रहे हैं नैतिक हृदार !
 जया बोली "हो बीरो निधि ! अन्तविदा !" फिर हँस दिया प्रणाम
 जया कह अन्त भी अन्तविदा हृदय में घर यह भूमि सनाम !

द्वितीय सर्ग



अनुर सनिकों ने जपर पा मूना अदान
कई प्रदेशों का बिना मन भरकर हिरान !

प्रलय-बहि की तरङ्ग अनुरदन कैंस गया आमा से
एक धार से आग लगा दी मूममय मुरषामा में !
देव-स्थान भ्रष्ट कर, नायिक द्रव भ्रष्ट कर दाम-
अमने हुए बृहो से पिशु इति-यगु तक नहीं निवान !

फिर भी भाये जगसो तपसारों के पाट जगारा
मून उठा राण के मुर-नीमा का बहु मान्तर मारा ।

धाय ललाई गई बर्तों में धाया प्यार प्रलय का
घात बर्तों के लिए कही रू यमा न हों धामय का ।

बनकर, लयकर तक से मित्र-नित्र प्राण चतुर्दिक भावे
विक्रम ध्यात विष्णु, धनभाओं ने गिरि, बन उब उब र्याये ।

बन-बन बाबानस बही लामा किति पर बाध
सब धूम्य में धमि कण करने नखत-विनास ।

कोष के सज्जन महाप्रलय-विमान सम
धूम-बन बिदे बन धूम्य मध्य खाने लवे
समस्त बहाते धन-बटाएँ-सी छाते
हृष्टि निष्क्रिय बहाते धीर विपति बहाने लये !
भीत सभी प्राणी अन्य-जैसे भ्रम भूल व्यासा
ही की ओर धूम-धूम भाये-जड़े जाने लवे
धीर दुष्टता के बाध वस्तु वेस-वेस यह
महृहास क्षण भूमि-धूम्य को भुंजाने लगे ।

महा हाहाकार, रक्षा दुर्जों का न पार,
बुह बन उपवन बन आर के सदन बध;
शम के पयोध मुक्त समा क विपौध ने जो
प्राप्त था उन्हींके शीघ्र धोक-भुग बन गए !
तेरते थे शीघ्र विष्णु मध्य धरविह-सम
कस बन प्राप्त थे ही अन्य मिश्र-जग गए;
करते थे युग जो स्निग्ध प्रभा जो भी उब
न हो धाज दण्ड बन भीति के नवन गए ।

धनु सौम्य तक यों धमुरों ने छोड़ित-धाम मचाई
जिधर मण उस धार नाथ की माँची प्रबल चलाई ।
कौन नहे कितने उस दिन बरबल से मण सदा को
कितनों के कर, पद रत्न दुस-बीपक से मण सदा को ।

दितनों ने स्वेच्छा ही से यह धान-मिचौनी छोड़ी-
बीबन-भोर सोह इस जग से जगन-पिता से जोरी ।

कौन नहे यह धाय समी भी मुर धामों-कुओं में
या सुरगण-हृदयों में रचित लीज भाव-पूजों में ।
इन निर्धन नारों ने या कतिपय को बिबल मुलाया-
धनवा सारे स्वर्न पट्ट को धाँची पाज बनाया ।

कौन नहे यह धुमा लगा या कुछ ही की धाँचो में-
या उमने धनवा दी थी वह प्रलय-ज्वाल जालों में ।

धनुर कह रहे थे हँस-हँस "क्या धुम धवसर धाया है-
कैसे बिना हानि ही हमन स्वर्न पट्ट पाया है ।
धन सुरगण का साहस क्या जो हमने मुँह करे-
धत्री पाज नारी क्या हम धमुरा के सोहा लेंगे ।

विष्णु पता या किन बिषाता को क्या हानि प्यागे है
अविष्य-वट के पीछे किन अविषय की लीयारी है ।

धन्य मीन्य सब माग्य समय बन जयन्त मर-मृत धाए,
मर-मृत के मुन्दर जपन की धन्य देन लसपाए ।
धनुर रात्र में भी धाया दी 'यही पड़ाव समाया-
धाय इसी उजबन में सब मना के निबिर बनाया ।

निर क्या या मुर-वन में धरि की ध्वजा लयी बट-पने
सग धनरथन मणर बन में निबिर बिनाय बनाने ।

इसी समय कुछ कुतूहलियों ने था सम्भार सुनाए—

‘भीति-घस्त सुर भाष रहे हैं बेरा-बीड उठाए ।

सात-सात पोखर तक सुर-सेना का पता नहीं है

खबर धातुमाल की भी पहुँची केवल कहीं-कहीं है ।

सुर-सैनिक जितने थे प्रायः हैं सब मार बिराए

घोर पडे हैं बन्दी-बुह में बोड़े बने-बनाए ।

पहुँचे हैं न अभी तक तो सुरपुर सम्भार हमारे

फिर भी बिठा दिए हैं सारे नाकों पर हुरकारे ।

फिर क्या था निश्चिन्त भाव ने निज प्रभाव फैलाया

मुख गाल ने मज-पाल ने मनमर रंग जमाया ।

कहीं हास्य के कहीं गाल के लगे ठुहारे छुटने

कहीं करिब के कहीं कृकृति के लगे खनाने मुरने ।

सब घोर घमुरपति भी मरकर बिजयाभिमान में मुक्तकला

निज रत्न-घणित सुन्दर बितान में धाकर बैठा इठसाटा ।

सैन्यपति पण था लगे दिवस भर के सारे वृत्त बगलाने

निज-निज रत्न की वृत्तियों को रंग रंग बिबिध रंगों में दिगलाने ।

‘सब बल सुरमल ही खोपी था घोर घमुर निरोंग

बिया मुरों ने ही जाकुत था घमुर-रत्ना का रोग ।

धाम-धाम में कुछ हुषा फिर घमुरा न जय बार्

घोर पराजित भुरगल पर देखोचित क्या दिगार् ।

वैशाखि मृदु हास्य सहित सब लगा घमुरपति मुनन

प्रलय-मेघ गया नष्ट गूहा का लगा मुदिन हा बिगने ।

प्रह्लाद विजय

भुन सब बातें फिर हमसतियों का उल्लाह बढ़ाता
उनकी हवियों पर हृषिक हो प्रमत्तता दिनसाता
बोला 'आधो सो विद्यान्ति मनमर ध्यानम् मयाधो'
जिस सैनिक को भी धारम्यता हो वह दिसवाधो ।
प्रात उपा-वास में है गुरपुर का कूब करना
घोर ह्म के गम्भ बन में ही है सिबिर तनाना ।

भुन हमसतियगु लड़े हो कर उल्लाह प्रभाव
कण बिना न निद्रा निद्रि, करने को विद्याम ।

दिन्दु भाग्य की बात कहीं की हुई न मन की चाही
या पहुँचे देवपिपुरी में लींटे हुए मिपाही ।
उनका हमसति गुरुन नया या धानी क्या मुनाने
तक-तक कर दिनभर की सब घटमाएँ निमचाने ।
बैठ नया धमुरदा भी बही निद्र धामन बिट्ठाकर
घोर मया मुनाने बित देकर उसकी कथा भविस्वर ।

नया मुनाम हमसति भी मुर धमुर-मुद्र की बातें
कहीं-कहीं किम-किम बिधि उनकी मरत हुई भी पावें ।
किन्तु प्रकार धमुरों में गुर-गुह यत्न किए भी मूटे
भिन्न प्रकार किम-किम यत्न के ये गुरङ्ग मारें हूटे ।
भुन धनुगानि भुग पर भी प्रमत्तता या धारि-
लई दयानि-दिया हृमिन् भुग अपने हृषि उगाई ।

किन्तु रमी धाम मुद्र की एक बात की याद
घाने में भग्न हो नया दयानि का गरिदार ।

इसी समय कुछ गुप्तचरों ने था सम्बाह मुनाए—

“भीति-ग्रस्त सुर भाम रहे हैं डेरा-दीह उठाए।

सात-सात योजन तक सुर-सेना का पता नहीं है-

सब्र आक्रमण नहीं भी पहुँची केवल कहीं-कहीं है।

सुर-सैनिक बितने ने प्रायः हैं सब मार पिराए

घोर पड़े हैं बन्दी-गृह में बोड़े बचे-बचाए।

पहुँचे हैं न अभी तक तो सुरपुर सम्बाह हमारे

फिर भी बिछा दिए हैं सारे नाकों पर हरकारे।

फिर क्या का निश्चिन्त भाव ने निज प्रभाव फैलाया-

मुत्प-मान ने मच्च-मान में मनभर रंग जमाया।

कहीं हास्य के कहीं मान के लगे फुहारे छुने-

कहीं करुण के कहीं कुदृति के लगे खजाने खुदने।

उस घोर असुरपति भी भरकर बिजयाभिमान में मुसकाता

निज रत्न-आबिज मुन्दर बितान में घाकर बैठा इत्साता

सेनापति बल था सभे दिवस भर के सारे वृत्त बठमाने

निज-निज रत्न की वृत्तियों को रंग रंग विविध रंगों में बिजताने

‘सब बल मुरगल ही बोपी थे घोर असुर निर्वीर

किया मुरों ने ही जाग्रत था असुर-बलों का योग।

शाम-शाम में मुख हुआ फिर असुर ने जब पाई

घोर पछाजित मुरगल पर देवोचित बसा दियाई।’

दीर्घाधिक मृदु हास्य गहिम सब लगा असुरपति मुनने

प्रथम-मेघ उपां मृदु वृद्धों का लगा मुदिन हा निनने।

मुन सब पातें फिर दम्पतियों का उरसाह बढ़ाता
 उनही वृत्तियों पर हृषित हो प्रमत्तता विनमाता
 बोला 'जाया सो विधासि मनभर आनन्द मनायो'
 जिस संनिक को जा आबस्यजना हो वह विनबायो ।
 प्रातः जग-काल म है मुखुर को कूच कराना
 और हस्त के मन्त्रन बन म ही है विबिर उगाना ।

मुन दम्पतियगु लड़े हो कर सस्नह प्रधान
 गा बिदा मे निज विबिर, करन का विधाय ।

विष्णु माय की बात बर्तों की हुई न मन की जाही
 या पट्टेय बेबापिपुरी मे सीटे हुए निपाही ।
 उनका दम्पति मुग्ध मगा या अपनी क्या मुनाने
 एक-एक कर दिनभर की तब घन्टाली विनधान ।
 बट गया धमुरा भी बही निज आनन विधवाकर
 और गया मुनने पित दकर उमड़ी क्या मविस्तर ।

मगा मुनाने दम्पति भी मूर धमुर-मुड की पातें
 बर्तों-वही किम-विम विधि उमकी मरुत हुई थी पातें ।
 जिस प्रकार धमुरों मे मुर-मुह भग्म विग घी मूदे
 जिस प्रकार विम-विम बल कथ मुरद मारब दूटे ।
 मुन धमुराधिग युग पर भी प्रमत्तता या धार्मि-
 त्व दवावि-विद्या हगिन युग उमन इष्टि उठाई ।

विष्णु रगी राग मुड की एक बाग की याद
 आन न मग हा गया दवावि का दरिदार ।

कम्पित स्वर-यव नत-नयन बाणीगत हृत्-साध-
सदा रह गया वह ध्वज प्रस्तर-मूर्ति समान !

देव अभुरपति ने भी पूछा कारण भवराजे का
कहा "कहो कुछ काम नहीं है इस बात जब जाने का !
रज है, जहाँ सान्ना बातों में धरि परास्त होते हैं
वहाँ कश्चित् निश्चय ही हम भी निज सैनिक कोठे हैं ।"

रामपति आश्वासित हो बोला "देव मुझ में घाटे
एक स्थान पर ही हैं धमुरों के सेनानी द्वारे !
है उत्तका भी घायी मेरा सहचर ही कृपयन्त-
विचकी कीर्ति-जन्मा से पूरित हैं आमर्त्य दिवन्त ।

सुन घावेग घोर अचानक से मानो अस्थिर होकर
सखभर देव अभुरपति का मुख फिर निज पर्य सँजोकर
कहने लगा अभुरपति "जवा रामपति यह भी है संभव ?
कि है हुधा कृपयन्त सेव्य वा ऐसी अपह पराजय ?
नियमित मुझ न वा यह वा निश्चयन धुरों से सङ्गा
निर्मय दुह-जायों में रत घामीणों पर जा पड़ना ।"

रामपति बोला "देव एक वा इसका हेतु विद्वेष
भेदा जवा उगे वा करने जब देवधि प्रदेस ।

दिन्नु है लोक वहाँ कुछ अजब रूप के तथा चाहनी भीरु
घत्रः न यद्यपि वहाँ न कुर्न न गिरि, नम न ही मुहङ्ग आशीर
तरपि बालाएँ मानव कुछ युवा—गव करने नो धरा दरे
लोप-नर-सोव नद गई दिन्नु न पीछे तिम भर भी वे हटे ।

बात भी फिर हम रण में एक समुत्-भूत समुत् घोर नवीन
बार के हम पर करते थे न और उठते थे निज हठ भी न !

बहुत समझाया मत बन भूर्प करो निज पण-जन का बमिदान
घरन सेकर या तो रण करो या करो समुराजा सम्मान !
किन्तु जाने के 'प्राचीमात्र हमारे ता हैं कण्ठ-समान !
किस तरह कर मचते हैं थला हम बिनीके प्राणों की हानि ?
ही न भुक्तता प्रतीति से कभी सत्य पर हड़ रू देना प्राण
हमारा है प्रमानतम धर्म धर्म पर हो जाना प्रियमात्र !

घत है विजय हमारी यही नि जीवित रहने तबें न धर्म
बनावे बमिगनों के धर्म तुम्हारा पणुबन बीरान-धर्म !
चाहते नहीं घोर के उचिन स्वयं पर करना हम अधिकार
बिनु उठने को अपने स्वयं भी नहीं हो मचत साधार !
बह मभी पम मं सा हट गए, न बी मरने की कुछ परवाह
मैंकों बाट मिराण मग, तदपि उनका न पटा उत्साह !

हम था बागल में बह प्रभो बड़ा ही कण्ठानुरूप विजय
देगकर हो आता था जने पाप तक माना स्वयं पवित्र !
मुनन से मृदुल तना में बन-सहस्र बह हड़ना आत्म छति
मरप पर, बिज प्रेम वर धर्म धनुम निर्मल हिमगिरि मम भति !
बात प्रबुमाधों तक मे एक सहस्र बमि हाने का उन्माद
मृत्यु-पम्पा पर भी गज-गुर्ग-मुगों पर बही प्रममय हाम !

एक के गिरने ही तन्नाम हमारे का सा जाना बही
देग जानी थीं रिगुना घोर छूना अपनी न जाने बही ?

कौन वा फिर को उपपर हाथ सोड़ता बना हूबय पापाए ?
इसीमे बयाई होकर लौक दिए मुरबस्त ने धमुय-बान !
अन्य सेमिक भी करने लगे भारने से समको इम्कार
घतः पीछे हट घाना पड़ा, सभीको उस बल से साधार ।”

पर असुरपति को मुन यह क्या दया के स्वप्न पर घाया लोच-
स्वार्थ प्रिय को भाता है वहाँ उचित अनुचित का भेद प्रबोध !
कर के लिए प्रेम है मोह दया कायरता दया अनीति
सत्य-सम्मुख मुकना अज्ञान सरमता मूर्ख जनों की रीति ।
जानता फिर वह किस बिधि मुरय-कवित बुपबस्त-गुणों का मोल ?
तुम ही न की वहाँ वह बुद्धि सत्य को जिस पर सकती दोल ।

छाप ही का हम कृति को उचित मानना करना वह स्वीकार
कि उसकी नय तो है ही धन्य यह समर भी है अरवाचार ।
घोर यदि असुर भूम निज तुरत हम तरह से करते स्वीकार
तो तुमन एवं दुर्जन मध्य भेद ही क्या पाए संसार ?
घत वह बोला 'अय-अय' बहुत हो चुका कायरता-मुच-बान
जान पड़ता है इन पद्वयन्त्र मध्य हो तुम भी नित समान ।

घोर जब इसीलिए मुरबस्त की अराजकता को बे रंग
चाहते हो रचना कुछ उमे बचा सेने का वृत्तन डंग ।
अनिष्टित करी इसी क्षण उमे हमारे लम्बुन लाकर यहीं
उठेगा वी जा मजनी कभी हम तरह के दोषों की नहीं ।”
मुख मुन उदाग हाकर सटा घोर अय निम्ता करना हुपा
मित्र के अनिष्ट का कर प्यान बानना मे भी करना हुपा

गया, एवं आकर सुगन्ध है कहा धमुर-बचन का सार
किन्तु वह तो बैठा था प्रथम ही हुषा मरने को तयार !
घात के हस्तों का या हुषा हृदय पर उनके घमेल प्रभाव
हो रहा था माली उद्भ्रान्त भूत वह घपना सरल स्वभाव ।
जानता था फिर वह है बठिन धमुर से पाना म्याम उदात्त
घट-बोना "तो भय क्यों ? क्यों किया ही है क्या देने तात् ?

जान जब क्या मैं कि हूँ धर्म मान हूँ भूम कर रहे पाप
धर्म ही था तब मेरा सुरत भूमि पर रण देना शर चाप !
क्यों सब कहन में क्या भीति ? करेया क्या वह लगा प्राण ?
छाय पर मरना भी है भ्रष्ट, पाप करने पाने से नाग !
दिए हैं निष्ठने ही दुष्टरूप साथ लग इसके इव्य-निमित्त
घात है करना मुझको उचित अभय हो उनका प्रायश्चित्त

देख जग यदि स्वार्थ पर देख व हूँ जान
तो देखे हूँ धर्म पर भी हँसकर ही प्राण !
ये न स्वार्थ-प्रिय इगमिण हूँ कि बठिन या मरप,
प्रयुक्त हूँ ये शाय मे घब घोर घप भ्रष्ट !

फिर बोना "घब तब भूटि कर भी इनना है समीप
कि है बिया न जानने पर मैंने फिर कोई शोध !
मरा रहा हूँ मैं निर निरवागों के ही धनुमार
जब जी भूम जान पाया तब ही कर दिया भुषार !"

गुरूप सोचने लगा "शय में भी है कमी शक्ति ?
पाणि-धरुण नमजन सपना है मग्न को शक्ति !

जहाँ पापियों को समता है मय कर्मों के फल का
वहाँ-साथ प्रेमी को होता है विद्वान्त सुफल का ।”

मुरख संघ कृपयन्त धमुरपति-सम्मुख धामा
देख ऋद्ध धमुराधिप ने भी धीमे उठामा !
किन्तु हुमा वह अकिन्त देख कुरदन्त मुलाहति
टपक रही थी जिससे निर्मयता अधिपत कृति !

धसके मुख पर बिम्ब भी न था ताप-परिताप का
बैठा था वह सिंह-मम से धामय निज बाप का ।

धस्तु धमुरपति ने बुद्धा उससे कटु स्वर में—
“कहो किस तरह हुए पराजित आज समर में ?
क्या बचान बते हो तुम निज बाप-रता का ?
मुरख के सम्मुख शिखरार्ध पामरता का ?

धबलाओं ने हारने क्या लग्ना धाई’ नहीं ?
यदि हारे तो क्यों वहीं हीरकभी लाई नहीं ?”

पर बोला कृपयन्त “मुझे भय है न ताप है
न ही किया मैंने कोई प्रयत्न बाप है !
वहीं पराजय पाई है मैंने पशु-मम म
न ही हार लाई है धरि के धम-वीरता में !

हारा हूँ तो मम्य म जो धारमा का पर्व है
धीर मुझे हम हार पर प्रगल्भता है पर्व है !

तुम हिरण्यररपण सभय करने क्या सरोज—
‘हमने पर धी पर्व है होने का विनोद ?

इसका तो यह धर्म है कि है भीति भीरता
घोर घृणित कायरता का है नाम भीरता ।
निश्चय तू कृपदन्त धाव हो रहा अभित है
या हो बैठा किसी मंत्रबल ज्ञान-रहित है ।”

एसा न हो कि यह तुझे बिना मृत्यु ही मार ले
घटा मसा हो भूम यह पहि नू यही मुघार ले !

पर बोला कृपदन्त है यह अनुचिन्त अनुमान
न तो अभित है चित्त मम न है हृदय यज्ञान ।

बात यह थी कि भीरता में दिया धाव तक
भीरता का भूत मेरी बुद्धि को भमाए वा
घोर जम जप पर घून-स्वार्थ क्रूरनाहि—
का पयोध मरे ज्ञान-मूर्ख को धिगाए वा !
मोह अभिमान घोर लोभ का धँपाटा मुझे
अप्य बना अनाचार पाप में कैनाए वा
छाय को अछरय पाप प्रेम को बया को दोष
दिगाने का मंत्र मुझे विनुए बनाए वा ।

विष्णु धाव देग दिव्य शक्तियों की मल्लि-रमल्लि,
इषीन वनम बोमने के यमायानों को
शत्रु म भी मित्र घोर बाद में पवित्र भाव
देस देग जाने जाने दिव्य बलिदानों को !
मुन-मुन भीरता मुपीग्ना वीरता के
नरपत्रम मरे बाप बीरों के तरुनों को
दूट घाग्ना के अण्ड छूटे हैं छत्रों के चन्द्र
देग दिया देने है रत्नमूर्तों की गदानों को !

धाम जान पाया भीर-धर्म का रहस्य है मे
 धाम जाना है कि युद्ध धर्म नहीं पाप है
 बात प्रतिपाद रक्तपात नहीं धर्म मध्य
 युक्त हृदय ही भीरता का ठीक माप है ।
 धीर स्वार्थ या अर्थ-यत्न के सिपाही बन
 रक्त बहाना तो नरक का कृति-कलाप है
 ऐसी क्रूर शक्ति का समूह बरदान नहीं
 विरक्त के लिए विधुग्ध वैधर्मों का पाप है ।

मुन धनुर्धर हो धीर बाल उठा “बन
 बुद्धिहीन बन्ध कर धर्म बरबाद को
 धर्म है प्रयत्न विपरीत विजिता से डंक
 मक्ता नहीं नू राजप्रीह धरबाद को ।
 बोला कृपण “राजप्रीह नहीं पाप प्रीह
 है यह प्रीह नहीं है कुनोती बरबाद को
 मैं न मान मु मा धम धाम की धर्मोति मध्य
 धर्म है बराना अन्यायिक विचार को ।

नहीं विजय है यह पशुधर्म की वैधर्म नीतिक तन पर
 विजय बन्धी स्वतंत्र हो फिर मुन जाना है राग पर ।
 जो वैधर्म प्रतिपाद हृदय को उत्तम बन हैनी है
 धान्ति मक्ता के लिए सुगम-यत्नों की हृदय मती है ।
 धीर न धर्म है मेरा विद्युत् स्वार्थ-धर्मि धम धम पर
 धर्म विजय धर्म धान्ति मक्ता हो विजय धम कर ।

सत्य, प्रेम की विजय जमाती है मन पर अधिकार
काट नहीं सकने विमल जगन्मन को कुमिल-कुटार ।

मुन यह धाम नग गई मानो धमुरराज के तन में
बोला 'धर्मो मुझ का हुक्मे करवा हुआ छान में !
है कुछ ज्ञान सामन विमल कानें बना छा है ?
कितने धर्म धर्म सब की गाथा मुना रहा है ?

किन्तु हुआ वृद्धत्व पर न इन धर्मों का परिणाम
कहने लगा सभी विमलना स बह धर्म कर-धाम ।

'मुझे ज्ञात है धमुरराज के सम्मुख बोध रहा है
और उन्हींकी बुद्धि नीति का पर्दा मोम रहा है !
पर सैनिक है है धारा मुझको निर्मेय हा मरना
निज विराम-धर्म-धर्म पर मन-मन सबहुध करना ।
बधा है मैंने निज धर्म है बधा नहीं स्वधर्म
कर सबका मैं नहीं भीनिषण कोई अनुचित धर्म ।

हैं सैनिक मैं बना मुग्धाध रिश रसा करने को
प्रवा-प्राप्त धर्मों की रसा में सदन-धर्म को !
किन्तु निरर्थकों की जगह कर, गृह-धर्म-धर्म जमाना
धर्मधर्मों विधुधर्मों वृद्धों पर पशु-धर्म धर्म बनाना
गान्ध प्रवा का मूढ-धीटवर परधर्म-विधर्म बनाना
सबधर्म धर्मों का परधर्म कर जग के धर्म बहाना

धर्मधर्म धर्म विधुधर्म नृप का नृप में जग बहाना
एक धर्मधर्म की धर्म जगधर्म धर्म विधुधर्म

प्रश्न यह है कि धर्म-विपरीत व्यवहार को है क्या हम क्षाम्य ?
 और क्या है सैनिक-वर्तव्य धर्म रखा जब रहे न क्षाम्य ?”

फिर प्रमुख सेनापति से कहा “आपका भी है क्या मत यही ?
 किन्तु क्षम्यता बोला सहजोच “कभी दुःशा में यह मति नहीं ।
 नीति-हृत दृष्टान्त रूप के लिये धर्म को करने से क्षमिमान
 घेष्ठ समझूँ ना निह स्याम सुम्हारा मैं दे देना शाल ।

मित्र के लिये मित्र की कीर्ति मित्र से भी है प्यारी अधिक ।
 सिखाए मित्र को प्रकटव्य पाप वह मित्र नहीं है बहिष्क ।”

युव धीरों की विधि फिर कहा “आपु घर के छारे उपकार
 शनिक भी मुटि पर धरि है बना दिये जा सकते सरल में सार ।
 तो करें हम सब कितने धर्म त्याग यह धारैना किन काम ?
 क्यों न इन मुटि को हम भी मित्र यही से अन्तिम करें प्रणाम ?”

किन्तु युवक ने कहा “हम मानता मैं तो मुनि भी नहीं
 धर्म है धन का धननी मुक्त मुसारे जहाँ जान हो यही ।
 ही न का मेरा वर्तव्य वि मैं जा मेना धरि ना ररा
 छोड़ता अनुगामन का पाप न रमता अपने मुनि सज्ज ।

फिर न का यह बतमाया क्या प्यस सम मेरा का भी कभी
 वि करने होये वे सब कार्य, कर रहे हैं जो हम सब धनी ।”
 प्रमुख राजानि बोला है किन्तु मोक्षने मुग य धर्म नहीं ?
 न्याय गुनिवार, धर्म है नहीं पाप छावन के आधिप यों ।

हा, भौकर त मुण्ड है किम जन का व्यापार ?
 एठ बूक से बूर हों तिमके दात उपचार ?
 तिमके दात उपचार, पाग भी हा करना ही
 पादात्ता के बिरोध में भी हा करना ही ।
 'अपिच' भनै ही उर पाग लाकर भर सीने
 पर मनुष्य हा ता न मौकरी पर भी कीने ।

दिर कहा 'जनों हम भी भिम सभी करें समुद्र का न साधार
 मानन को मनिह के प्रवृत्त स्वर्णमावणा के अपिचार ?
 नहीं मिलता है गम त्र व्याप बिना दिनपाल अपनी दानि ?
 बर्ष का क्या जाने न व्यर्थ नदा में है तिनका धन अनि ?

कनीकरण है माधु के धर्म गम्य व्यवहार
 तिनु गनों में दानि हो पानी है निम्नार ।"

मुरख का रोग समर-गान्धर्व और भी नव हा गग तपार
 बड़ों क माप न होना कौन कुरंग तपार में न को भार ?
 धर्म में लड़ने जा समुद्र का कहा "कीने पुनर्निवार
 धर्मका हम सबका भी रक्षा-धन धन कर सीने स्थिरार ।
 हमारी मति न भी है नही विभीषा जग में यह अपिचार
 बि लेमी समुचित धुनि के तिम करे बर मनिह को साधार ।
 गामवर नव है अपने दिया माधु का भेन रंज भी नही
 पीर है पार्श्व न रक्षण हाति भी उमरी कृति में नही !
 नही है यह साधारण बर्ष मुठ है प्रथ त्रिग व्यापार
 और उमय दाना रक्षा-धन है मनुष्य का निश्चिन् अपिचार ।
 दानि भी कि नियम धनुषार नही है यह रक्षा-धन मुठ
 न ही है हमारी सभी नही कभी जा नवनी मुठ विमुठ !"

यवराज कर समुद्रराज की बुद्धि ठिकाने हुई और गठ को ब
नगा कहने लगे हो कुछ नम्र सभी को देता हुआ प्रबोध :

‘मही बा मेरा नाम कदापि कि मारा ही जाए वृषदन्त
क्रिपु इतना मय वा धनिवार्य इस प्रपति वा करने को मन्त !
रामा करता हूँ मैं सब उसे पर जसा बाय वह इसी धान
मन्य कोई वसपति या अन्य सके इय विषय मे न कुछ जान !’

वसुपति बोले हा कृतकृत्य ‘रहूँ प्रभु ! सब विधि वै निश्चिन
भापकी उदारता ने स्वतः कर दिया है वसपति का मन ।

माता के समुद्रार ही होंगे सारे काम !

हुए बिना कह वसुपति कर-कर पुनः प्रणाम ।

वृषभदन्त ये भी गमेह-मुन गुप को किया प्रणाम
तथा कहा ‘अगर भी यदि मेरे योग्य सभी कुछ काम
हो तो निजको ब स्मरण करिष्वा मैं धाऊँगा
एवं वह सेवा कर सचमुच प्रतिशय मुन पाऊँगा !
मुझे नहीं है इय प्रयत्न वा यह स्वयम् का स्वादा
बैते समझे तथा धार नभरों वह ही समुदायी !’

समुद्र देव वृषदन्त बीर वा यह उदार व्यवहार
एवं कर स्मरण निज कृत वसुपति उत्तरे उपहार
कुल नजिमत हा नम्र हुआ एवं मुझे दिलाकर
दिना किया वृषदन्त बीरवर की वे समुचित धावर ।

तृतीय सर्ग

इन्द्रपुत्री मध्य आत्र का अगण्ड चम्प भीति
चिन्तना का मानो वे ही बृह-बृह दा रही थीं
हेमो जिने आगें उसही की आनने का प्रिय
आत-मित्र-समाचार मानो अनुसा रही थीं ।
स्वामी ही आत्मा विनी पवित्र को आर देत
दोही उमही ये कृत पूजने को आ रही थी
विनयी ही कृत गिरि-गिरि, अटारियों के
गीत बड़ी आरों आर हटि मटना रही थी ।

ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता था त्यो-त्यो आनन्दता बानी थी-
रह रह आता पर आनन्दार्थों को रत्न बानी थी ।
उपर दीप्य की भीप्य उज्जुता अमग अपानी तन थी-
भीतर-बाहर जहाँ देगिए, वेदन जवन-जवन थी ।

जब प्रपात भी धाव नहीं मानो "धारण" गाते थे
सतित-यम भी घट मैनों से धामू बरसाते थे

इसी मीति जल्पन-जल्पन में था सब सुर-पुर मूसा
घाव कवाचित ही था कोई हृदय-कमल तो फूला !
रिन था किन्तु बिचीके भी हृद का न कही दिनकर था
था कैसाच उमा थी किन्तु कहीं बमरु छविबर था !

हृदय नहीं थे धाव निराधा-धाया के रान-बन थे
मुक्तिमान बिम्बन रासासी के धास्विर धंजन थे !

धन में सज्जमा संभ्या-समय जुना वह सब ही ने साक्षात्
कि मुरपति-ग्रगित कोई दूत धमी साया है कुछ सम्बार !
मच गई बम धर धर में धूम छोड़कर सबही निज-निज काम
घट्ट म से कोई कुसदीप स्मरण कष्टी बोई हरिनाम
सगाकर बाई गृह के द्वार, आन्ति-बाध में बहरी हुई,
बधू का बोई नीति स्वकार्य सज्जम रहने को बहरी हुई
जमी सब धावी भवन की ओर, बना निज-निज सगियों के मुत्त
कर रहे हों ज्यों मर-जन पार हृष्टि सद-बल्लरियों के मुत्त !
छेदनी विविध धावुरी बध धनेकों असामयिक कुपमंन-
रिनानी मन्दन-वन के मुमन-भृगु की भीति विविध रवि-रंज-
सजी पहुँची मुरपति के तदन धावी ने सबको धारर दिया
साम्बना है हे मधम बँठ पन जुने का पापह किया !
मुनाया गया पन थे मध्य धमिन या धा मुररस में मिले-
मभी मुर मोहनाह धरि-रिता बड़ जाने थे निर्भय जने !
रिया धावीग में धावुरीध किन्तु धा विनीजो न स्वीकार
टहना था मैना विभाव न हो जब तक धरि-जीया पार !

प्रसार विजय

विजय का है पूरा विश्वास, न कोई कुछ बिम्बा मय करे
न ही श्रुत-मिति हीन सम्भार किसीके मुस से मुनकर डरे ।

पन सबल कर समाने पाई किञ्चित् शान्ति
मिनी बहुत-कुछ स्वयं की बिम्बाओं की प्रान्ति ।
सभी की स्वयं बिम्बानाम्ना किन्तु धीरों को देती स्वयं
बताने सभी कि किस विधि उन्हें उचित है रचना निरवस धैर्य ।
किस तरह उनका साहस और सुरों का देमा दुगुनी छति,
करोनी प्रिय रसा किम भाँति समर म उनकी लक्ष्मी शक्ति ।
घन्त में घाहत-गण सवार्य योजनाएँ बतलाकर नम्य
बताया फिर था उनका स्वयम् हम बिद्या में क्या शुचि कृतम्य ।
इसी विधि कर घनेक घालाप गई किन्तु ही निज-निज घाम
किन्तु किन्तु ही लेती ही न की पुनः पर जाने का नाम ।
प्रतिघण्ट देव रही की चाह कि पाती है कुछ नूतन बात
घोर जाएँ भी क्यों ? किसलिए ? काटनी ता भी जमकर टान ।
विम घा लक्ष्मी की मुप-भीड़ मिय छाती पर इतना भार ?
कौन रह सक्ता था निश्चिन्त हृदय में रख यह माउमार ?

इसी भण रात्रमार्ग धार रख बड़ धार
बान पड़ी घोर बान-कुने परब हिनहिनाए
बम फिर क्या था जग पड़ी भारी स्मृति माना
मुत बन-केरी के पयोध रख मुन पाए ।
ध्यान भजन धीर नृप ततघण्ट उठ उठ
नून मनी अनि भाव सभी सबकों को पाए
बाबकों के घाम रही मुना मुनो धारि रण
विभीष मुने ही मही को ध्यान म न मान ।

घागे रब पीछे बली उलुक भीड़ घपाट
क्षण में जा पहुँचे सभी इन्द्र-भवन के द्वार ।

घची ने भी द्वार दिखा ज्यों ही रब घोर सुनी
र्यों ही बसाव साम उठी घीर द्वार दिखा मनी
पृच्छकों की भीड़ से भी मानो सब जुगाधिक
चिन्तना की भीड़ महिषी के चित्त धा लयी ।
जान इतने में किसीसे कि घाया है जयन्त
एक नव घाया-ज्याति हृदय घची के बची-
करने सगा बिसाव हास्य घबरो में घीर
घागे बड़ी घनी जाव घरी प्रेम जाव में पयी ।

किन्तु द्वार में जयन्त ने नहीं जया ने जामु
को छिर झुकाते हुए प्रेम से चरख घुए
इन्द्र घामिनी ने भी जया ही को जयन्त मान
यसे से सयाया प्रेम अधुं बरसाते हुए ।
सता-सी सिपट बानों स्वर हो रहीं शखेक
धानो जुमुदिनि-जाम में कमल छित्त गानु
वा घत्रय जाम्ही की घट्ट हरि वैदियों में
पौगिमा मयङ्क हो निराङ्क चित्त धंस रहे !

घरनु हर्म्य में जा सब बँटी छिड़ी बचा फिर घर की
जयन्त क रणभूमि-दिशा जान के घुम-जवसर की ।
ब्रमरा एक-एक कर, मारी स्वमुर-जब जाने की
रगिनु गहोदर, बुद्धिधियों के पति के सैन जाने की
रितमा, रिम बिपि की सेना भी जया रबत बयों घा ?
घादि बहानी प्रथम जया में सविस्तार गमम्य !

फिर सुर-महिरी ने सुरपुर के सारे कृत सुनाए,
 वर्तमान लख तक गण-बल से आए पथ दिखाए ।
 क्या मुरों की सम्पन्न यात्रा के कृत पङ्क पहराई
 रहने लगी "धूप में ऐसी दिन भर लपे-लपारी
 बुधित आलस सेना का रिपु से कहीं कुछ छिड़ जाए
 तब तो जगदीश्वर ही मुर-सना की लाज बचाए ।"

बस इतना का बहुत समा में बिम्बा कलने को
 समानोषकों का सविबेचन प्रतिमा दिखलाने को !
 गुने क-व प्रतिगवालिप्यों के सना पनने बाध
 होने सभी भविष्यवाणियों दूध जैसे बिरसाव !

देख क्या की बुटि का यह कम मुर-महिरी हो बिन्तित
 करने सभी मल करने का हम वर्षव का प्रमनित !

बाली बेटी ! रक्त न बिन्तित हो इन पटनाओं से
 मुर-गण है पर्याप्त योग्य लड़ने में बाधाओं से !
 फिर है मुर-मुन घोर मुग़ारे रबमुर माय मुररत के
 समुर पालि कृत काम न बेसी सम्मुख उनके बल के !

म्याव-वरा है गुनि मुरों का वात-वत घमुरों का
 अज मकर में बिजपी होगा निरचम पल मुरों का !"

फिर आलस-सेना प्रमन ल मल्य व्यवस्था मारी
 क्या क्या न पूछा बेटी क्या है राम मुग़ारी ?"
 क्या मुदित हो बोली, "देखता है इससे बड़बड़,
 कौन कार्य क्रम पर मुरकापाओं को धमरकर ?

बहि मागुभी आजा द, मैं लख माय बाईसी
 घोर पाप ने इन मुग़ल में वरम पालि पाईयो ।"

बोली राखी, 'सहिष्णु है यह बेटी योग्य तुम्हारे
सत्य प्रेम सेवा तो है ही प्राणान्तर हमारे !
इन तीनों ही में है केन्द्रित पौरव महिलाओं का
वही जर्म है, सब देशों में मुर-मर-बाताओं का ।

कार्य हमारा है, पुरुषों को दे निस्वार्थ सहाय,
कर्म-मार्ग में सफल बनाने के रख सभी उपाय
उनके कटु कर्तव्य-मार्ग को सरल सुपथ बनाना
कर दे भी धार्मिक भाव रखना जग को सिखाना !

दियमाना जिस विधि हम जानाएँ हो भी परकीय
कर लेती हैं वास्तव में पति-पतिवृत्त सभी स्वकीय
जिस विधि हम सबमुख पति की छाँटोपिधि बन जाती हैं
उनके मुख में सीक्य तथा कुन्नों में कुछ पानी हैं
जसी भाँति सम्भव है जन को भी धार्मिक बनाना
सबमुख समष्टि के मुख-मुख से जन का मुख-मुख पाना

एवं निज व्यक्तित्व धूम नरसे सेवाएँ सपाना
छोड़ कुटुम्ब कर्म-बही पर जीवन मुद्रित बनाना ।"

फल भी पाँछिन ही हुआ मुरादनामग-निरा
रण बर्षों तक सोचने सभी ब्रह्म-निमित्त !

इसी क्षण फिर आए सम्बाध कि मुर-पति-वर प्राया है एक
साथ ही आए उरमुक्त बने देशियों के भी मुख धनेक !
राखी ने प्राप्ता ही सत्त्वान कि जर का साया जाए यहीं
हून न था प्रणाम कर, दिया पत्र मुर-महिषी पढ़ने सभी !
मुनाया फिर जिस विधि धरि-गात्र लखा फिर बँस बर्षों बड़ी
जिस तरह मुराति का अनुराध भी न मुन लेना प्राय बड़ी !

प्रसार विजय

किस साहस से गुरों ने निज बप्टों को भुल
बर्पा ही में धनु पर किए मत गज हूल ।
एक फिर बोले उठी 'मुर-सैम्य' न नहीं किया योग्य यह काम
गुब्बानु में तो निरवय ही उन्हें टहरकर मेना का विधाम ।
दूठ बोला "ब मुरपण देखि । क्रोध से धन्ये-से बन रहे
हृदय में मरही के के कंड मने प्रतिहिमा से जल रहे ।
गाय ही सेनापति इत्यादि सभी का या गमा धनुमान
कि तरावण बरज में धावमण मिलेया हमको लाभ महान ।
"बा न कहा गीक है पुन । करने सब धुन ही भगवान्
गुरों का साहस धुन की इया बभूषणियों का धनुष-जान ।
देव-बानाया की हरि भक्ति राज्य का सत्यपूर्ण व्यवहार
करने निरवय विजयी उन्हें भव ही धनु बन संसार ।
बहा फिर सबम 'जब मुर-बुन्द तीर्थ है एसा दितसा रहे
गुब्बानु भी मन का शोध धनु न है या धनुसा रहे
तब हमारा भी है यह ही धम कि बन कर मरबी बीरामता
न धान दे मन में भी भीति पराजय धानिक की बनता ।
रहे प्रानुन महिमाई सनक सब में बरज का मघाम
तथा करन की धरि का नाग का मिटाने का घना नाम ।
हुया इसका प्रभाव भी उचित सभी के मन में दृढ़ता जय
रखवच निर्बलता पर प्रानक हृदय में समित होने लगी ।
मरा नर साहस सब ही लयी मोचन धुन साहसमय बार्
कि विमयी करके के भी गिना मने निज राज्य प्रम धोरार्य ।
देग नग परिगर्भ का हुया सभी के मन में धनि धानन्द
सभी बहु गिन उनर गुब्बानु फिर मरता या मरबल ।

पत्र भिज, घर को है, फिर कहा "मेज से इसको छात घुसल
घीर फिर धाकर जो विचाम करो इस बीड़-भूप का धस्त ।"

जया कुप देख रही थी बाट, भिजे कुछ जयलत का लक्षित
किन्तु कुछ कहा न घर ने न ही दिया राणी ने कुछ भिजेंत ।
उधर सबके सम्मुख भी बा न पुछना सम्भव ऐसी बात
किन्तु उत्सुकता का भी नहीं सहज में भिटता का उत्पल ?
पड़ा असमंजस बेहक कमर साज मन-हृच्छ में छिड़ गई
बहु जमी नही रक्त की धवर-कपोलों पर लाली बढ़ गई !
हेतु निज नागरिकों में घूट नयन भी लम्बित हो झुक गए
इबात भी देख मार्ग धक्कड़ एक लख क्यों-कैसे-रुक गए !

धन्त में साक्षा मध्यम मार्ग छासु को उठकर बिया प्रणाम
घीर सहचरी-सहित या किया अनाकृत सयनामार ललाम ।
फिर वहाँ कुमचा घर को लगी पुछने रल-सम्बन्धी बात
जया जब कह छेना को छोड़ गई होगी तब भितनी घल ?
नवामल ऐनिक-मल के पले प्रमुख छेनालीबल के नाम
मार्ग में हो यदि कोई भिजा प्रमुख नव-सनापति बलधाम ?

किन्तु या घर न बनुर, बहु गमक ही मवा नहीं जया की बात
घीर है सीध उत्तर लला बेगने घर जाने की बात !
जया भी पद-तो कुछ भित्री किन्तु फिर समक छल निरी-
बाध छाहन नूतन पच-बाध त्यागकर सरल भूत प्रति रो-
गुन लगी जबमगर-संन्य धा गया था तब धपवा नहीं ?
गुन ने भी धक्के लव गमक, जोड़ कर बहा माधुवी ! मही !

मम्मक ? वे धा गए हों मेरे परचाइ

किन्तु उम समय तक न व उनके कुछ सम्बाह !

मुन जया करके जर को बिदा गई राग्या पर करने समय
 बिन्नु होते ही ये सब बल बिना निब बन्दी पाए समय !
 रहा था पहले तो बित्त धिरा सजाने म जयन्त-अंगार
 पहुँचने में फिर सुरपुर घीर बहाने करने में विविध विचार !

देखने में पथ के सब हृष्य कमी करने में कोई बात
 बिन्नु इन समय न था कुछ काम रोकने की चिन्ता की बात !

मृत या घबराह चिन्ता घोर बिरह ने छड़ी अपनी तान
 बनाने लगे छठों की तरह धरधित अवस्था पर है बाण !
 सफ़ाई पादुकों है हृदय-मध्य था छोड़ी उबल-मुषल
 हृदय क्या संग-धन हो उठ बिबलता की स्वासा स बिकल !

दूत से सुनी हुई मन-माल जया-हृद में माना था बिरी
 कठिना के उठने ही राजि बनी बंध्या गुरीर्ष हो जाती !

पल-पल पत्र म जयन्त का किसीके धान
 की हो बनी भालि सगियों को लगी मेहन
 तद-मत्र की तरर ध्वनि मात्र मुनकर
 ही उठ अरागों म म धीरे लगी दलन !
 बार् न दिगाई बने पर हो निराग पड़ी
 राग्या मध्य लगी हार मुषलों के पवने
 बभी तन होवन उबाड़ने बभी बनाने
 बंगा कभा धनुषानी उठ-उठ बंठन !

बभी बार् घम-धम पाठ करने का बीर
 निबट धंगला बिन्नु बहाने पड़ पाती थी ?
 धन्यों को देग-दग धानों धन्यगानी माना
 उग्र म धपुन परना विगत भाति था !

घाँसों को भी घाँसों में घाँसकाठी किसी बिधि
 सो न मानो कृति मन प्रब मैं लजाती थी-
 संत मे निराश हुई, फेंकती निरवास फिर
 पुण्य-राशि-जैसी सेवा मध्य पड़ जाती थी ।

फिर परिवारिका के राशिनी छिड़ती कभी
 भीपड़ गरब पति-विष मेंपवाती थी-
 कभी छिड़काती सारे छम्मा में मुनाब कभी
 छाती पर सारी पुष्पमासाएँ बिछाती थी ।
 रह रह होते थे पसीने सबरुता मन
 पीने की भी माया-जोर छूँ छूँ जाती थी-
 झूली सब होछ कर-कर रोष होष दिती
 रंग को बसा के मित्र रेशों को मनाती थी ।

कभी मन मार दूर करने को कूब मन
 भर भर रोम की तरंग मन घाती थी-
 भिन्नु मध्य के वही जमक रहे थे हृदय
 में तो तेरे जमूके नि रहे जमी जाती थी ।
 फिर जब देगती थी प्राणों में स्थित पति-विष
 सब एक धीरे बाधा बड़ जाती थी-
 रोष मय पा नि विष ही न भुल जाय वही
 बिना रोग धार-मुक्त हाती नहीं छाती थी ।

बंटे वस भी न पड़े रंग हृद पर पुण
 बिगड़ रहे थे वसनों पर गुनार-मे-
 राग न ब भूग बन जाने कंटकी-म नील
 रानं करने ही रंग रंजने रंगार-मे !

प्रज्ञान विजय

घड़ि-मुघा-मौकर बरस रहे थे सतत
बिन्दु धारा से वे तप्त लेम की पूझार-मे-
सारे ही पदार्थ कम थे जो प्रम भाव वगे
धारा बन रहे स्वाम्य से वे बुराचार-मे ।

जगा कुछ ही लज के पञ्चान् पडवन रह रह बहिरु नयन-
हो रहा जया प्रप घब कटित जावरस फिर कना धवन ?
बीनने जया प्रनिगलु लङ्कार युव-मम कणों ग पूर्ण
हो जने हृद-मत्त हृदयस माव कजाहु की चोटा से जगा !
स्वर्ण-सी देह पड़ जमी स्त्रीत धाम्नि-मुक्त जमी भीत हा मने-
माव धारा-धाम्नि ही स्वाम्य मोड़कर फिर-फिर घाने मने ।

देव मगिमी का छुग धैर्य वर कुछ भाव धर्मी के निर-
मुनाकर मारी बातें कहा धमका है मानुषी विर- ।

धर्मी ने तुरत जया के हृत्पट्टार में धाकर दिया प्रका-
देव मगिमत हो उठकर जया स्वस्थित करने मगी स्त-वैद्य !
धर्मी को हर प्रज्ञान फिर मेज पर बिठा कुछ मनुषाजी हर्-
भूति पर, कामु बरण के निर-समय बीनी पबलती हुई ।

जमी न देव हुए अनेक शक्ति मान्यता कहा—“मैं धर्म
धनाधारक बातों के विविध समावर भूने रम्यिध धर्म !
स्वमाहय विदुषी का है बहुत मंदा बीरस कम जाना विर-
न है वेचन मगमा की वन करेगा धीरों को भी विर-
नकिध मोचो धर्म भुम ही स्वर्न इग तप्त होन मगी धर्मीर-
ता बिने देव लदेमे धीर हृदय दग विरति-गर के मीर !

विरति धर्म से निपजता है निरीरें वनी-
वर बनता है मोह का दुग्ता दुग्ता धर्म

बास्तन में धिन्ता के लिए नहीं है अब तक कुछ भी बात”
 कह राखी ने देकर मग पग गत-नयन पुन-वपु के हाव-
 कहा “इसको पढ़ निश्चय तुम्हें मिलेगी बेटी सच्ची शांति-
 साप ही होगी सब कल्पना प्रमासुत केवल भय की शांति !”
 जया ने पग झौलकर पढ़ा और सचमुच ही पाई शान्ति-
 ततलत उसके मुक पर बसक लठी वह ही पहले की कान्ति ।



चतुर्थ सर्ग

उपर बसू मुर-भूट की बिना रहे दग लख
बही बनी घा रही थी बिना मुझ की टेक ।

दधीपति ने लमसाया बहुत देखागु । मे सो कुछ बिधानि
गान हो मोहन कर सो ताकि उज्जवा की मिट जाय करानि ।
बिन्नु मोहन भाठा बा बिग यहाँ लो की उज्जवा बन रही
मनी के हुरषों में प्रतिगोष भाव की लोपी की बन रही ।
फिर सिने बिनय घावर दग घोर जो बही उज्जोरे बसा
बाग ही उज्जोरे प्रदेव हुरष की बहु मर्मानिब बसा ।

उज्जोरे निबिबु उतर निदा "घाव बा मोहन हग दुज
बही बनवर मेरे बिधानि बही होमे बन दुज बा मुज ।
न अब लख मुर-भीमा न लख-भीम बा बनि-बनि हग बाव
या न अब तक मुरभूट बा बग-बिबाद तक बग मे मिट जाय

पाँति को तब तक हूँ गुरदाज । स्मरण करना भी होना पाप
हूँ तो बिठना बस्ती बने भिक्षा दीजे धरि-बल से धाम ।”

जल रही थी बटाह-सम भूमि धाम बरसाता का आकाश
सूद ही जपटों से हो गया बन्द का कुलों तक का स्वास ।
कृपायी मदिरा स्वर से घस्त जा रही थीं पवराई हुई
बासु भी दूक रही थी छाँह सताओं में कुम्हलाई हुई ।
अरुण-अरुण अस्त्रेशों से प्रोव रह थे सर्व सहस्र कुट्टार
किन्तु गुर-दल ने दाग भी नहीं ठहरना नहीं किया स्वीकार ।

धन्त न गयीं-स्थो मध्या निघातति नगन दिनाई दिष्ट
मिना ने निज हृत्पगुणम बड़ा नगर, भिरि राह बाट डक लिए ।
बासु को बचकर आया बन्द बसुनों का बनना हा गया
मूर्ध धक्काकर, पय-निधि-गर्भ-अध्व जा सुग मित्रा से गया ।
चन्द्र-सम रसिमयी बना गाव गुल्य जूनम पर करने सर्वा-
नेकती हुई मुदित हो आंग निचीनी छिनी छिने लगी ।
इपर सेना से आने कई पुष्टचर बरे घनेकीं बेरा
जल रहे थे रणते यह ध्यान कि रिपु का कुछ वित्त आय नईग ।
अचानक उन्हें दिनाई दिष्ट, एक भागी में पड़े अचेन
भीर बच कुछ धमुरों के दून भूषकर निज निपुण्टि का हनु ।
गुर बगों ने उनको सत्तात बाँधकर निज बन्धी कर लिया
धीर उन ही से सब कुछ जान, रास्ता गुरदल का फिर लिया ।
हुई गुर-आली छीका दूट घाम्य से दिम्भी के निर गया
धनु की सर बलि-जनि का पना भुल का दल ही ने मिल गया ।
गन्ध के अयम-अर-नट गिदिर मजाने की भी चाई बाग
हृषा करको मुनकर मजोर कि हागा धर धरि ने जगाम् ।

महानिर्घय

प्रधानक धन-मटलों के बगों दिवालों को धावून कर दिया-
राशि के मागो सारी ज़मी धीरे नभ-मंडल को भर दिया ।

छा गया महान् लम चट्टी धोर, इच्छितो बटी धानी शक्ति;
धीन में प्रावृत्त का धनना देव मोर्गे में उमड़ी मन्दि ।
हमारे ही धन सभी पृथक् बना न छटा धरना काम
बापु के भी पान्थ बुद्ध जोर, मन्नापा उर्मा के बुद्धगम !
मन्नीरति के मुरमण के कहा शत्रु है यत्तपि धनिधय निरन्तर
ठहरी नग ममय बुद्धनु के कार्य बुद्ध का बना दिया है निरन्तर !

कहे हुए भी हो सभी धन करो विधाय
प्राप्त धरि न करें निरन्धय ही मन्नाम ।

विष्णु देवगण हृद रह निरन्ध निरन्धय धनुषाट
धीर मन्नाम धानमल को हो नग नगर ।

मन्नारति न भी कहा धनमर है उरपुन-
हमी ममय का धानमल हमें करेगा मुक्त ।

गुह्येव ममय धान "मुरगण" ! यदि सभी बुद्ध करना हा-
दा काज राशि में ही लम चट्टी का नगर भरना हा-
तो निर्धय हाकर बद्धि, हमको बुद्ध धारति नहीं है
धरि के धिक् जाने की उरपुनता हमको धरिक् नहीं है !

विष्णु देवगण ! धिक् को कहे मन्नाम कर दीने-
बोध-धन्य हो मुर-जीर-विनीत कार्य मन कीने ।
मन्नारति बोले "धरि ही है कीज मन्नाम-धरि ?
उमने लो लम के ही की है मृति नट दह मानी !"

बुढ़ बोले निरुचय ही धरि है कपटी अत्याचारी-
उसने छल-बल से ही की है इतनी हानि हमारी ।
उस ही ने अनेक जामों को है समघान बनाया
अबलाओं सिधुओं तक पर है विपति-बल बढ़ाया ।
पर फिर भी क्या उसके सम होना है बर्म हपाप ?
बोले दलपति है क्या उस का हमने लिया इबार ?

कर सकते हैं वस्तु जब स्वार्थ-अर्थ अनरीति;
तो निज रखा अर्थ क्यों बहूँ न हम वह नीति ?
यहूँ न हम वह नीति अस्त धरि भी तो जाने—
कैसे फल पाती हैं छल-कौशल की तारें !
प्रभा ! न हम इस अकसर को सहसा छोड़ेंगे-
अवर्म हो तो भी न इस समय भुंह नीड़ेंगे !
सह सकते हैं निर्बल, कुरबल ! निज प्राची की हानि
सत्समिच्छ धरि तक को सकते हैं के निज जब मान ।
किन्तु नहीं सह सकते सिधु अचलाओं का अपमान
अबका होना बर्म धीर स्वातन्त्र्य धारि अचलान !
न ! इनपर कर तो क्या कुहटि से भी भाव करेना
किसी नीति हो वह निरुचय ही उत्थण बही भरेना !
किर कायवध ने ली है निर्येसों पर अति अलवाई-
प्राज स्वर्न-कटों का उससे अधिक कौन है बायी ?
प्राज असीसी कर कूरता के ही बने विचारः
कितने सिधु जीवित ही अलकर नहीं हुए हैं धार ?
नदीं धुन गई है रो रो रिहनी घातों की लाली ?
नदीं न रिहनी नुन-नृज है बनी रात की काली ?

यह घातनाभी-जय में है बिहिन धामुरी नीति

घाता पीछे हूँ घात तो छोड़ घर्म की भीति !”

गुरु बोले “बिचार करो मत बीर, ब्रह्मचर्य होकर,
घाता धमुर पड़े हैं मुरख के पीछे कर धोकर !
उनके निशट श्वास धारिक का वृष भी मृष्य नहीं है
उनके मित्र स्वर्ग रोख मुग-मुग धुब नक्रम वहीं है !

बिन्दु देखना ! देख देख ही है के नर शब्द

कभी न रिगु की दुष्ट नीति में के हो घण्ट बहने !

सोचो यदि घादयम प्रति घादयम का हम भी घण्टा में

धमुरों की घण्ट-मूर्ति भीति को घण्टी नीति बनाते

निश्चित पड़े धनु निशिरों में आकर घात मणा दें

किर भयभीत घनायिन घनावर दम्भात्मक जमा दें

ता फिर क्या घमुर धमुरों की बनि मध्य खेवा ?

बौन धुरों का धेज धीर धमुरों न मणा बनेगा ?

निग बल पर हम धमुरों को बिचारें-ममतायें ?

रिम बल पर हिमा कर भी बरिन हो हृदयों में ?

क्या शिवाकर बोले, है मरणा वन हमारा ?

निग बल पर बालों हमको मरने जिने जगत् ?

घनः मूचना भिन्न हीनिए निज मना घाने की

बहमा के घात-यचना है लम्पट मर जाने की !

धीर यह कि हम मर-बल मर रगु-बौल का कर आन

निज-निज जाही के योद्धा को करने है घातन !

हौ यदि मुमता रसीजन यह मुर रगु का निदम न हाता

तो फिर घमम मुद के निदमों ही का पानन होगा !

सेनापति ने मुकुन्द रज से कहा "धमा हो स्वामी !
 प्रविष्टोहो ही मैं बत के से इस क्षण हम अनुगामी !
 मूल-मुग भीषण कथा भगुर-मण के धत्याचारों की
 निशोंपों निशोंब मुरों पर हुए कर बारों की ।
 पापल हैं बन रहे सभी हमको कुछ भान नहीं है
 हमें इस समय कुछ भावना उम कुछ ज्ञान नहीं है ।
 यदि साए भर के भी लिए धाप पुर । इस धापहा ज्वाला को
 इस धारि कर्यों की स्मृति-वट पर मलमलती कवि भावा को ।
 उम धाँसी को को मुर-मुबकों के हृद्यों में जलती है
 उन होनी को को धाज मुरों के हृद्यों में जलती है
 उम स्वाभिमान को को ठोकर छाकर बापल बन जाया है
 उम मरपुवकोषिष्ठ मन को जिसमें मुरल ज्वार धाया है
 उम कुनह जलन को तीव्र केवला को निज मन धर सकते
 तो निरक्षय ही हम लोनों की स्थिति का अनुभव कर सकते ।
 धरा, जेजते हैं सभी हम निज भूत विधेय
 ठीक समय पर धनु को देने एण-उन्धेय ।"
 बसा भूत धरि विचिर में देने समराज्ञाग
 दवर लवा मुर-सैन्य में होने मूह-निधान ।
 नट्टा उबर भूत मुरमन का ग्योंही धनु-बलों में
 त्योंही बारों धोरनन गई यहवक दिनु-गिनियों में ।
 कीन निरुतता ही का बाहर को बर्षा का भाग
 धरा जल का भार सभीने बड़ोसियों पर टासा ।
 बड़ोसियों ने भी बन्धित उत्तर दे भगड़ा बैठा
 धोर निसीने कम्पित उत्तर कर भी ह्रास्य लौटा ।

कहा किसीने, धरे ! कुरों मे मिल छापा मारा है
 कहा किसीने मरम हो गया छबर छिबिर सारा है !
 कोई बोला माय रहे हैं रे सब तुम भी घायो
 कोई बोला धरे ! मनो चुपचाप न बूढ़ मचायो !
 पनप जो जागा वह उठ मागा मुह उठा जिबर को
 कोई जमा घांग धीरे ही जाने देव कियर को !
 छूट गए पदचापु किसीके घोर किसीकी पपड़ी
 हाथ पड़ा बस पारिज किसीके घोर किसीके लकड़ी !
 किसी-किसीने बरसी बरसी फिर पर बांधी कछ्छी
 किसी-किसीने ध्वजधराली से वीरों मे पहनी !
 कितने जन घाँव भीने घायल ही में लड़ बटे
 कितने बैग तोड़ भागे तो खम्भे के पड़ बैठे !

कितने ही लोग धरे छाप हैं पसीर पानी
 बरत रहा है दुष्ट दृष्टि नहीं धात्रा है
 कजल के बूट जमी बूझ पन-बिरी ऐसी
 पत्रि में भी जला वही मुड़ किया जाना है ?
 तुम भी बिबिध प्राणी हाथी ! दूसरों का मृग
 मानो मुझे बूढ़ी घांग भी नहीं मुहाना है
 माने के समय जने घाग बूझने को वहाँ
 धरी मरना भी भले जाह मे ही जाना है !

बटुआ सारा हाल हिरण्यवराट के निबट
 रहा बूढ़ सरवाज धात्रा की धनुरेण मे !
 पुन कहा गज मुड़ बा है न हमें धम्पाम
 घन गुह नियम नामने वा होवा न प्रपाव !

सेनापतियों ने कर प्रबल समझाया सबको विपति स्वप्न ।
 फिर वन विभक्त कर रहे बूढ़ पत्र कहीं पदाधिक-बल समूह ।
 बज उठे संस भेरी निशान बन्दीपण यामे लखे मान ।
 दलपति निज-निज दल को प्रचार बुढार्थ लखे करने तयार ।
 महताओं का जैता प्रकाश तब थापा मानो हो हुआ ।
 सब ओर बैचपण सबे साज झपटे ज्यों सधि आवेट-बाज ।
 हाथ में भुज वल घस्पास्त्र बार घड़ गए, जड़ी ध्वनि मार-मार ।
 मिड़ पड़े सुघट तब प्राण-प्रीति धायी समझीला भुलु भीति ।
 ली लौच किसीने कर कपाज कोई ने चढ़ा सुलीरण बाल ।
 कोई सेकर बन्धुका कटार निज मरि पर कर बीज प्रहार ।
 पर बने पदभुज बहि-समान पाए जग्येजय मत्ताह्वान ।
 पत्र में तो भी बचसा एक बल पड़ी वहाँ बपता धनेक ।
 दोनों दल-कट रज-बाज घोर बाहुन रज रजकत गुमुन ओर ।
 जन ओर विनिम्बक दलमान बचपोष धूरपल ध्वज बाध ।
 बर-बीर हूक बाहुत पुकार घस्पास्त्रों की कटु रलुकार—
 में हूब मया यों तदित नाह ज्यों निमु-वर्ज में पक्षि-बार ।

रज-वन्द में धन-वर्जता निरुद्ध हो लय हो गई
 रजनी-धनी की सपनता घटना रज-धुति में गोमई ।
 बों धुनकर दोनों बलों के बीर रण में घड़ गए
 ब्रामामुगी हो शोच कर हा ज्यों परस्पर मिड़ गए ।

दनी अगमान को अघात मान मानो फिर
 मेघ-नामा घोर-घोर कूटि बरमाने सधी
 बसा बनी मानो काम रात्रि घट्टहास कर
 तम-बाहिनी को धमि-नीघन दिगाने लयी ।

बापु बखी मानो छेप-सैम्य जर जोष, कन
उठा वध रोक दोनों दलों को डराने लगी
उपलों का ताँता लपटा मानो मूर्ख सृष्टि सब
मर्म-मर्म सगन से गोतिपाँ बसाने लगी !

किन्तु कब मुरझाने का बटा न रह्योस्ताह
वे बहते ही गए सब जीवन की परवाह !

सब ओर बीरों को बरख करने की पुढे
मुत्प बीरोंगमाघों के मुझ-गीठ गाने लगे
कल गान गाते हटकाते, मुसकाते मानो
झूर मुझ-बला को भी छरख बनाने लगे !
तब को हटाते हट्टि सबों की बचाते पुण
मातापुं बिछाते मुबकों को समजान लगे
देग-देग धमर मुनों क प्रेमी मुप भूल
भूद-भूद गुप्त धनिबारा मध्य नहाने लगे !

ननिवों का माना भाग था न निज बेहू का भी
धन की तरह चुन बाँधे मड़े जाते थे
धरत यत्र धमुर-यज्ञति, रपी धठिरपी
बार में जो छाता उधीका धर बचाते थे ।
धन्यवार था तपापि हाथ दहते थे वध
दधता मे लटप कर बिरोधी को पिराने थे
उधों-उधों पात्र गाने रथों-रथों छाता था धपिक काप
मात्र-मात्र धीर धर धाये ही बहाने थे !

देखते ही देखते रणोन्मत्त बाँझुरों के
 कर, सब परिण कृपाण बाण भड़ गए
 कहीं पैदलों से घसक कहीं कुत्तरों से रसी
 सामने पड़ा वो बीर उस ही से भिड़ गए !
 हाथ काटे किसी के तो चरणा किसी की कटि,
 चीख कर बीर कितने ही भूमि पड़ गए
 कोई कुछ भूय ज्योंही भूमि मिरे त्योंही पन—
 घोर बयाछान मध्य बीच बीच बड़ गए !

कोई मुड़ पड़े बार-बार करते ने कोई
 व समीप साक्षियों का साहस बढ़ा रहे
 कोई दण्ड लंप सिए बलों में रहे ने होड़
 कोई धनु को ने कस में बचाए जा रहे !
 कोई बडे हुए, भूमिचाव धरि-बस पर
 धनु में परिण निरक्षय ने हिता रहे
 कोई निज धनु को उठाए हुए सूर्य दिया
 क्या ने उस राह बहामोर की दिया रहे !

कूट मुरछन का तो पूछना ही क्या बड़ ने ज्यों
 चारों घोर रज बन चकर मगा रहे
 व प्रलम्ब कर परिण प्रचण्ड सिए
 देन शक्ति का ठीर-ठीर से भया रहे !
 बहा भीति होनी बही पहुँच-पहुँच बन
 व बह पुरजों व नव माहम क्या रहे
 भुनकाय भरप गमान विसर्पाटी कर
 गिह मय पमने बह घेर का मुजा रहे !

घबरेते ही बीजते ये सी मुरों के समान
 धन में यही तो लक्ष्य बही जा पुकारते
 कहीं समुद्रों का मय-मुत्प ज्यों मगान हुए,
 कहीं निज लक्ष्य धरत-कण्ठों में उतारते !
 जहाँ मुर-बाहिनी समिष्ट भी हटाती वेर
 कहीं देन जात के मुरों को सलकारते
 बाजीगर-जैसे कभी बाबि बड़, कभी गज
 कभी रथ बँटे रथी गजों का प्रचारते !

शिम धार जाती उड़ धनि समग्रधारी की
 मुर गुमने के हविष्यार पूर पड़ते
 म्यान में निबल जहाँ धूमनी बनी ता मानो
 भागन ही मावने भी भाव्य पूर पड़ते !
 धाक बट धर्म समुद्रों में ऐसी दृष्ट की कि
 दृष्टि में ही माना वेबि देव कठ पड़ने
 परिष प्रहार करने को बाहु उठने ही
 समग्रधन हा मुर-धार दृष्ट पड़ते !

बट कभी रथ की पुकारनी बिनास मरी
 बटे बाहु पार मलय जग उन्नतान मय
 धाम धिक्-बद्धा समग्रधन तन्निध-धनि
 दृष्ट-बाहु-मकर महान बट जान लय !
 गुण बने हाथी पदरीन उष्ट्र धात धादि
 बौद्ध-बौद्ध धानी ही मैना का गान लय
 नृप मना दुष्य राक्षसी की काना हँ जान
 मय-जग रथ दन नाच नाच महान लय !

पड़ीं वन पंक्ति मानो लोहित-समुद्र मध्य
 ठौर-ठौर मध्य द्वीप पुष्पों की कतार हैं
 या समुद्र-वर्म-पथ खेल-भेषियों के दूत
 देख रहे लड़े खंग-मुकुट की बहार हैं।
 छप्प पड़े मानो पाँच मकरो से भिरे हुए
 बैठे सिन्धु-कण्ठों के बड़े सिरदार हैं
 जिस धोर देखो बस छावपा मुलात्त रंग
 मानो छाए बम्ब-बी के फागुनी त्योहार हैं।

हो मया घनीर्ण भूत-बाहिनी विद्याधियों को
 प्रलय के रेव भूतनाथ मूल कर उठे
 भूमि पोसी पड़ जैसी बल उबर आई
 मानो रज-कणों के बी उबर छफर उठे।
 बग्निका के लपेटों की कौन कहे खेल नवी
 मद माने-खाले सब लोछित से भर उठे
 मत हुई जाती कर उठी भिन्नकारी गुप्त—
 मुक्त धिक् प्राण हिय भंक में निहर उठे।

धामधार से एक वा सबको लाभ महान
 करता वा प्रत्येक निज जब का ही अनुमान।

धनु लड़ से धनिक राजि गई, सब कहीं
 बारिहों के मूल पति गो सगे बिगड़ने
 निमानाथ मगत-नयौवरों से पिण्ड छुड़ा
 बिनाहीन बने शून्य में मने बिगड़ने।
 मुज भूमि पर से मचनिरा उठी प्रकाश
 रतिम-रत्न सगे रजभूमि में उगड़ने

देव-सेना पीछे हट घाई थी घबिफ देव
 देव मुर-सैनिकों के समे रोप भरने !

सैनानीगण सैनिकों को दे-दे पिक्कार
 सेना में करने समे मचात्साह सचार !

रोप-मगे मुर भी बड़े भरते रण-कुद्धार
 निरचय कर, धरि सैन्य को कर देने को दार !

उठ बर की तरह बड़ बिछठ-मति न मुर घाम
 मानो मदन-बाण-भाहून हो बड़ उमापति बाण !
 बाण-दाव सगी धुक्क मुर-मेना प्राहून-यन-गम फिरने
 क-मट म-सीन बीरों के मयु-विन्दु-गम फिरने !

विन्दु घबरावा ने धमुरों का रण उल्हाह बढ़ाया
 और उम्होंने भी हिम-निरिबन हड़ हो बड़ मचाया !

पच-पच हार धा मुर, धरि न निम भर प-न हगया
 धमुरों ने हम बार मुरों का धमुर त धोर्य दिगाया !
 बारण भी धा रपट धमुररस धाव बढ़ा हुआ धा
 उनको रिक्क प्राप्ति की धागा का धा बढ़ा हुआ धा !

उपर कुछ धमुर नम में जाकर मय बाणु बरवान
 रत्न-धरिबयी बिनातः दासरावा की भड़ी मगान !
 हम पटना में बुद्ध-दगा में सगना पनटा गाया
 बहनी बार रपम-मेना म भय न पर बढ़ाया !

धाव बढ़ावा कटी, कटी कड़ जाने प्राग के धाव
 यही बटन का धरि बाँध पड़ बिबड़ी बाव निभाये !

हेक न सफटे के के धरि को न ही मार पाते के
 सोम लगाने के पहले ही मुर मारे पाते के ।
 कितने ही निज मामों में चढ़ शुभ-विद्या उड़ते के ।
 किन्तु बिछल चाहत हो फिर सुख पर फिर पड़ते के ।
 कुछ धुंध-सा अकस्मात धाँधों में भर बाठा बा
 धीर व्यक्ति बेदम होकर सख नर में फिर जाता बा ।

यस्तु, हेक बस बिचल इन्द्र ने अट नुब को बुनवावा
 नय विपति का सब रहस्य उनको बहकर उभरवाया ।
 सुन नुब ने हँस हाथ धनुष से सबको सर्व बँधाया
 कहा हड़ रहो धनी मिटेयी सब धनुरों की भाषा ।
 घर संभाल सकय कर धरि को फिर कुछ बाध बनाए
 राख में नमचायी धनुरों के सब रथ बंध पिराए !

बन्ध हुआ यह काण्ड नुरों के जी में जी फिर आया
 एक बार फिर मुर-सैना-नरन में सेन कँपाया ।
 द्विगुण क्रोध कर बाहु-बेध से सभी मुर नमू बहने
 सबकी बार सभी धनुरों में भीति पगाल बड़ने ।

इसी समय निज सेना लेकर जगत रण में आया
 सबसे प्रथम विनू-नरनों से आकर धीध धुकाया ।
 फिर परिचय पा सब बातों का बाँधित झूठ बनाए
 कहा तबु की धीर लज्जित रोदे नर बाध बनाए !
 गिना-गुन के रूप-नाम्य पर सबम अचरज छाया
 करने लगे धनुर भी धनुर न है बिचिना की माया ।

मनमुक्त समता की खोजों के बखश व्यवहारों में
 केप्टाओं में, पति में स्वर में एवं हुंकारों में
 इतनी की कि देख बखरज से भर ही जाता मन या
 धातु भर की छोड़, ब्रह्मा ब्रह्मर बहुत बटिम था !

घलु कर खोब मन भरे प्रतिशोध भाव
 बचसा की भाँति दृष्टि संस्य में छिराता हुआ
 मानो एक बार ही में निज-गर पछ झूठ
 घाँसि मभी बानें हृदयंगम बसाता हुआ !
 मँसिनों के हृदय उमंगें-सी उठानी हुई
 समस-समस स्वयं-स्वयं चञ्चलता हुआ
 समुद्र टँकोर, धैर्य लोड़ता विरधियों का
 बिबसी जयन्त बना रिपाएँ गुबाना हुआ ।

मंस्य मंस्य भा मुरों की लमकार, बोता "पिह ।
 समुद्रों के भाग पर पीछे हा हटा रह
 समर बहाने हुए, हो क्या पात्र पून निज
 बंग-बीति भीति मृत्यु से स्वप्न ना छ ?
 मोचो हम भाँति तुम न ही घले की निज
 देखियों के प्रस के प्रयोग ही बना छें
 विनु नाम स्वयं सरस्य मुर-मनिनों का
 भीतो रूप निज जमनी का भी बना छें !

भुव दाग हा बना बन इन्हीं समुद्रों के मुर
 गुन की जलाया या प्रमथना से भर-भर
 मास या पनाँदा मथीन दासहीन मुर
 सिन्धुओं की दृष्ट-देखियों का व्यंग कर-कर ।

करोये क्या क्षमा हई ? नहीं कभी नहीं
 तो बड़ाघो घाये वीर, बीरो ! बीसो पर्व हर-हर
 पड़ो मृतराज-सम धमुर-मृषों के बीच
 झगट जगट मारो समुषों को पर-पर ।

जयजय-बाजसों का हुषा यंत्र-समान प्रभाव
 दग्न गुर हनों पर निरप पर्वों समुद्र मल-भाज ।
 दलित सर्ग-सम कोष कर, बना-बना निज धूम
 बाज-येय से बड़ जने गुरपुर-संम्य समूह ।
 गुरेन्द्र भी निज हृषय में भर वृत्तन उरसाइ
 धुम धरि-जम्बू विषु में लेने विषु-जल बाइ ।

गुरु बड़े फिर जयजयों से धरलि-धूम
 दुपित गुरों के मुग-मण्डल समक उठे
 बायिनी की संम्य-सम बासी बास दधि मध्य
 भासों बासे भासै प्रसप्तताले जमक उठे ।
 चारी घोर बार-बार, बीरों की हृवार मध्य
 कासी-कर के निगुल-धप्पर गनक उठे
 फिर एक बार गुर-संम्य-वर्जना की गुन
 कोनों में पड़े हुषाज जगारे जमक उठे ।

धमुर-जम्बू के बाजकों से भी स्व-संनिधों से
 बड़ा लपकाट, बैगना न बाठ जमी जाल
 टेढ़ी टांग टांगो गारबोबी मुग्ध के न
 फिर रग घम रचने ही का समय घाय ।

सैम बन जायें रावों के तो बन जायें निम्नु
कायों का पर रंज भी न पीछे हट पाए
मूर्ख उमने के पूर धात्र घमुरों का ध्वज
बाद है अभी कि हृष्टपुरी मध्य पहराए ।

बड़ा घमुरों का मन सैम्य धिरे मानो बन
धुमड़-धुमड़ धार धोर बुढ़ होने लगा
बाण-वृष्टि बारि-बार क प्रवाह मध्य बड़े
बड़े रण-मर-सैरधों का बँध मोने लगा ।
घमि-बपवा की चतुराई मरी चारों देग
चतुरों को काम रंग भात्र का मिगोन लगा
बह चले लाते माने दालिउ-मनिम मरे,
मृणों का समूह मल-मल धंस मोने लगा ।

महा घमामान उन का न उठा मान बस
गत्र के समान मन सैम्य सम मड़ने
धमकावाट मध्य सद तनों के प्रवाह-मम
बट-बट बरों के टापीर लगे चढ़ने ।
बड़-नर घमि बलि रत्न बड़े मुचुरों ने
रत्न, मानो घाँगों से घाँगारे लगे भड़ने
घपरा मुरेघ के धरों के शून्य भेदन ने
मने शून्य-दर बड़े मगर उगढ़ने ।

हृष्ट है प्रबन्ध या प्रमत्त का प्रमत्त धीर
धनुषों म चारों घोर प्रबन्ध-भी टाके हृष्ट
बड़ा बाण-वेगवान पान में बहिन हृष्ट
नाएगाध बँधे निर घटन को माने हृष्ट ।

झोण के समान हुत पार्श के समान तीरग
घरों से जो धनु-सैन्य में वे मानो जाने हुए
छाँट-छाँट धनुषों को मार रहा था यों मानो
सभी धनु-सैन्य उनके से पहचाने हुए !

बाण क्या वे छूटते थे मानो क्षिप-व्यास पुरत
एक एक बीग-बीस दस्तुषों को काटते
कौन क्षिप मंत्र हाथ उनका उतारता जो
घाव मंत्रवाहियों ही को वे मृत्यु बाँटते ?
छूटने ही बहराने छहराने बहराते
गिरते जहाँ वे बही धनु-मुन पाटते
जिस धोर जाने उन धोर बल ही के बल
हटि घाने दस्तु वूमि वो वूम बाटते !

विष्णु जगत्त हृदय में इस रत्न में न हुआ सम्पीय
उनको का हिरण्यवस्त्र पर ही धारणित रोग !
धोर धनुस्पर्श कही सैन्य में नजर नहीं धाना का
प्रदान कर भी जगत्त उनको देना नहीं पात्रा का !
जगत्त में इसलिये धन्य में यही मंत्र मन ठाना
कि बाह्य धरि-निबिरी में शस्त्र का पना लपाना !

कहा सारथी बकर-छकों से मन्त्र ही जाघो
गुण देव में धान धनु-मेना के बीच बजाघो !
रुद्ध न धाव न पहुँच जहाँ तब धनु विबिर में जाएँ,
सम्प न कोई भी मैनानी साव ह्वारे धाएँ !
धना बड़ा रस देन यह धनुर् मैनानी बकराण
जानि जानि भी धारणार्ण कर करके पकड़ा !

दिया प्रयत्न उन्होंने भी सरसक बाधा देने का
 घबरा घबरा को ही थोड़ा देकर घर लेने का ।
 किन्तु जयन्त-सरो के सम्मुख किसका बल चलता था ?
 को सम्मुख छाता था उत्थाण भूमि पड़ा मिसला था ।
 तबपि लगा ज्यों-ज्यों जयन्त रज निफट तिमिर के घाने
 त्यौं-त्यौं सवे प्राण धमुरों के धमिक-धमिक धमकाने !
 घब घरि भी हड़ झूह रज मरण प्रतिज्ञा ठान
 लड़े हो गए मार्ग में धवल हिमाद्रि-तमान ।

तुमुस दुख मज मया कटिन ही मया मान का बड़ना
 करते हुए सामना धरि से घब डेरों पर बड़ना ।
 उमर धमुरवण ने फिर मिस भीषण पड़पड रचाया
 हानि उठाकर भी रज के बलों को काट निरचाया ।

किर जयन्त पर सवे सभी मिस बाण-वृष्टि बरमाने
 जयन्त का बज ही करने की मुहड़ प्रतिज्ञा ठाने ।

धल में गए बज-रसवण एक-एक कर मारे
 गक-गक कर मिरे घब भी धन-निधान हो मारे !
 कटा मारपी के हावों का धनुष गरिष भी टूटा
 बज बज भी बज-सरो ने जयह जगह में गुना ।

रात्रि लज्ज का नूर-मेला को कुछ भी पना नहीं था
 नहीं गहर न जानेवाला कोई मिन नहीं था ।

देग बह बना मारपी ने घर से धमि-दान
 तोड़ मान बज दिया निज मध्य दिना तन्मान !
 उरध धरण कर मारपी ने मारे लम्हार
 धमकाना की दुष्टता जयन्त का गमाव !

बल-राजों का मरण एवं रण की हानि
अथिह इन्द्र-मुक्त हो बड़ा तप्त सुबल समान ।

बड़ा क्रोध सुरपति के जसने लये धर्म धर्मों धारे
जड़ने लये धसौक-पुष्प सम धाँसों से धंधारे ।
धधर फड़कने लये भूधुटियाँ भीति सगीं धँसाने
दसन-धनियों लगी स्वच्छ आपस में मिल मिल जाने ।

तन वा वहीं किन्तु मन रह रह धया उठाने धरने
प्रतिपक्ष उनको लया प्रसन्न के मुख की तरह धसरने ।

गुप्त-कवच आच्छादित ऐरावत को निकट र्ववाधा
धीर धँककर परिण काम भू-सम-निज अनुप उठाया ।
धामा ही को ऐरावत की धुधों में करधातें
तवा धः रही तम रसक बन निज निज बाप मग्धातें ।

छोड़ बाग हो गवाकड़ फिर, लिए वस्तिनिध धापी
हूत दिया सुरपति ने निर्धम धनु धर्म म हापी ।

लिया धरामन हाव प्रसन्न ने धानो धनु उठाया
धाम में धमुर-धर्म के हृदयों में मय धर्म्य जमाया ।
ऐरावत के लव कुचक ही बनने छात्र धुधारे
धाम्य धेनवन् धमन धरि के दल के दल म्हारे ।

धधरधधो के धाणों की धृष्टि धमन की धारी
धूँध धी की धाण-धण में धुरधण की धध-धधकापी ।

धमुर-धर्म्य भी लगी धधध ता मिल धाया धृष्टाने
किन्तु धिन धरी धुरधनि ने धर धीर धाक धर धाने
धार्ध हो गवा ध्या धध धधध धाई धध धा-धी है
धधधा धेग धूर्ध धा तम की धमा धट धापी है ।

मभी सज्जनों धमुर चम्प में, होश उड़े धीरों के
गुरुरति के तीरों के घागे बिछे बैठ धीरों के !

मामो मत मयम मया मृग-रत पर क्रोध बछाने
धनवा धुधित मिह धन-मुलों को घर धून भित्ताने !
पाप बने धरि धीरों के धीरज का धैर्य छुड़ाते
मरवा सोच सोच से जलते सब की इष्टि बचाते !

बूढ़ हो सभी धमुरों की जब घाटा भर-धौदन म
शोक भीषिता बढ़ उनके मन से बढ़ गई गदन में !

देग मुपधमर मुर-मेना ने भी निज रीर बढ़ाया
धमुरों ने भी समझ-झूझकर अपना मत ठहराया !
छोड़ बूढ़ गुरुरति की के मुर-मेना पर धा टूटे
घोर मुरों के सभी मनोरथ किये लज्जालु झूटे !

पुन जहाँ वा तहाँ उभी बिधि मुड़ हा गया गाँठ
भून याग मय दिबर यग है ऐरावत लहवारी !

द्वार विना पीछ मुड़ देग सब मय बिम्बा रमान
जयल की रसार्थ बड़ जाने व लहरानि जाल !
दम क्षम मानो उनके तन म लौ हर्नों वा बन धा
लज्ज बरसावा वा-ना ही बाबम्य धीर बीजल धा !

म ही रीति धी उट्टे धनु-मेना ने फिर जाने की
म हो बिनी पटना-बम रग मय के जाटा गान की !

देगवर उनका धनुष तोड़ पात्र व उनक बर मर बरिद
बनाबिब हाता धनकड़ उग रतन भी देग रानि निज धनिया !

किन्तु वा उन्हें न कुछ भी मान इस समय ये बह रण रस पने
वा रहे थे चाये परिपूर्ण और पीछे उनके घर गये ।
किस समय सेते ये किस समय जाता दंते ये वह निज बाण
निकट बैठे साथी भी मान न सकते थे उनके यह मान ।

कनक-रक्षित ऐरावत समय बन रहा था समुद्रों का काम
विष्णु-विदि का मानो फिर रहा ठोड़ता घर में घरे मृणाल ।
सहस्रों का करती चाबेट, बस रही थी बसकी तबबार
सहस्रों उसके कुचमें हुए, पड़े करते थे हा-हाकार ।
बिपर पड़ता इतान्त-सम दूट व्यूह रचना हो जाती व्यर्थ
न होता साहस ही कुछ काम न रण-कौशल का रहा धर्म ।

इस इतना विविध बन गया कि कितने ही बस कर रस बन
मूटने लगे इन्द्र के नय्य इस समय-कौशल का धामन्य ।

किन्तु इन्द्र का वा नहीं इन बातों पर ध्यान
लने जा रहे थे बड़े बह ली धन-नमान ।

घर बरसाते घर पर्वों का लगाते बरस-रस बहुमान
माली प्रलय बचाते हुए
धन में धन्य सम धन्य पार कर इन्द्र
पहुँचे जयन्त के निकट गुण वाले हुए ।
विष्णु वा जयन्त की वहाँ यह ध्यान घूम बह लो
राग वा बल बना बाण बरसाते हुए
मानो मृगुद्वय-बभ्रव मृगु-यग्य निग
धूम रहे हा जमे निरन्तर बसाते हुए ।

बार-बार शत्रुओं के संग्रह बाँध-बाँध दल
 क्रोध के पयोध बन फिर फिर घाते से
 विजु विजयी जयन्त के घरों की परिधि में
 जो बग बहाते से न सीट फिर आते से !
 दाब-फोट क्या था जाल था समुद्र भ्रमरी का
 दाब-संग्रह मामो मच्छरानि मँडराते से
 जहाँ पछे थे पैर जाल में तुरन्त उन्हें
 बाँध दार जाल स्वर्गधाम पहुँचाने थे ।

नाम न दली भी समुद्रगण की कोई जाल
 वे वर्णन थे धीर था सुरपति-मुवन मत्तल !

विपुल समान कण्डूएँ हो रही थी वह
 तरंग विधिलता प्रगतिवों में थी न नहीं
 दग मुग-सौर्य सुरदास-मन धनिमान
 भर उठा रणजों की झल्लें फिर भी हो रही ।
 घन में महाजन सुरेण घन-रत्नकों के
 जयपीठ थे जयन्त की ममाधि मुनी नहीं
 हाथ दहे नेत्र उठे धोए हिने धीर फिर
 मुनिहीन दृष्टा वह धीर फिर गया वहीं ।

धिरने दग जयन्त को महान उठे सुरदास
 जना जगपा क्या प्रभो ! धर्म नवी धम धात्र !
 विपिन पद कर नाच यह विजय हा जना विन
 विन न जाय दल धातु में नहीं धातु का विन !
 उपर मुचरगर दग धनुर-नीला ने दार मगपाने
 माता रैन महान मुनों में जिज्ञा नये हिताने !

राग भर में पनसहित उम्होने निगा बिगा मुग्धपति का
 बाँगनाएँ 'हा-हा' करतीं धवी बेध इस कृति को !
 सबी दिखाई देने धवि-मूल पर चिन्ता की छाया
 क्याव नङ्ग बया रवनी का मुक्त पवन-हृदय भवरागा !

पुनः हा उजड़ जिस बड़ी हल मे निगा फिर स्पन्दन गूलीट
 उमी धम लल भर में मिट गई मृत्यु की वह छाया बम्भीर !
 न धम मे रहा वह धमुर-धीरे न वह दुर्बल बालो का पाप
 न मूर्छित जयन्त का ठग धनु के करो में पड़ने की छाया !

फिर उसी भीति अर्पित सुरनाथ वर्जकर धूम्य हुआने लगे
 प्रनिलग महसस धरि-नैम्य की निरु कृत विमाने लगे !

एक पल मे धमुरों का पर्व लवं हो भिदो मे निम बया
 बुझिनी के बुझों की जगह भाव्य है सरनिब-बन प्रिल पया !
 बुझ करना क्या धम-धनुष पर बहाना हो पका घनाध्य
 लगे होने उठने के पूर्व ही पुनः विरले को धरि बाध्य !
 धरों की धाँकी है धरि-नैम्य-बलों की धाँकी निचने लकी-
 उन्नी के लल पर ग्यों धीहम-रीम प्रनि रवि की दिखने लगी !

धम्य है धमुरों मे निम रचा एक नूनन भीषण पड़स्य
 लकी पर बबल-जल को लहर बनाने लगे बाध वह नैम !
 देग यह धमुरों का धमुरल कूर्चिल पर सज्जन भाषातः
 बड़ा मुग्धपति को धनियव कोष धीर जानो बल धम माणाद्
 बल-मय पर्वन बनने हुए उम्होने निगा बह्यर गोच
 धीर बीने "हे दुष्टो ! नाथ रही क्यों धीम मुग्धारे भीष ?

छान कर चुके बहुत हैं देख घाव तक घमुरों के घम्याप
घोर हाथा है धुक्को जात कि यह हाथा घमिम घम्याप !
न समझो मुरमण है घममर्थ, जानते नहीं घामुरी मुड
पा नहीं हैं वैज्ञानिक समय में तुम्हारी ही भाँति प्रमुड !

कर बना क्यों ही धनु पर बाण बचसा मम में भगमम उठी
भूमि कोनी बकरावा घूम्य उठाइ-बाण-बधू हिन उठी !
पवतो के बरौण वर जिनाई छाड बन दिपपाम
बराबर में व्याहृमभा बरी निधमने सपी देख म ग्राम !

ममी को घनुमम होने लगा घमी होने वाली है प्रमम
रिना ही घमिम आम हो निरक भा गया है निरकय बर ममम !
घमुर की स्मिन्धन बन हो गये देखने लम गड की घाट
गाते सपी बना प्रति पमक घुन्य घुन्य के घमिम घोर !
मची उल्लाषापी की घूम उल्लमन सदा विपु बा हृदय
पमिमल मुरम बाण उडु बने मग बने बनकर भी हो ममम !

मकाना ममम भूमि म प्राम-बाण की घुम प्रया छा गई
निमा होवर माना ममभीन मगन-हीरन-बनिपाँ ला गई !
रिगाई रिग उमी छाट घूम्य बध्म कर निमून दमक निग,
मते में घहिमासा गिर मम व्याघ्र-बर्मावक घारम निग-
प्रमम में बरबाणछादिन बीन-गिगा-मम दिदी बाजिमय दग-
बाण-दगि बरी हृदय में ददा हृष्टि में उर्ये बरमाने हनद

लेखक घुनमदल में प्रया दिगापीं न लिखाने हट
उमार्ति ममी-घाथय निग, गये घुर-मम घुनवाने हट !

देखकर सहसा सेवा-सहित प्रेम से सुरेश्वर-सिर मुक्त बना
 भूल संशय सौम्य प्रत्येक धड़ मूर्च्छित-सा हो रुक गया !
 दूसरे ही क्षण धन-सम्भीर गिरा से कहने लगे मोक्ष
 विपत्ति में चाहिए न बों धर्म-नियम को देना तुमा सुरेश !
 तुम्हें है ज्ञात पुत्र ! सुर-संघ-मध्य वह वैज्ञानिक संशय
 तथा वैज्ञानिक धर्माध्याय से लिया जाना रज में काम !
 धारम रणार्थ और समकामी के लिए भी है धार्मिक
 प्रज्ञा बन पर तो इनका भार बिना जाता है जोर कुर्म !
 और सुर बना मनुष्य के लिए भी स्वरदा रज है तब उचित
 जबकि धर्माध्याय सति, धीमान् धीमता में धरि हो सम-सजित !
 क्मान्त निहित मित्रास्य तटस्थ रम्य निर्बल जन पर आकाश
 बिजाता है कर्मों तक कष्ट प्राप्तिमें नौ रौरव में तात !
 जन्म-मृत्यु तुम ही करने लगे तात ! यदि इन नियमों का सत्ता
 तो कहा बिजने क्षण तक बिबर, रह सनेमा यह मन्दार-जगत !
 मिया है फिर तुमने तो ब्रह्म धरज धारे धर्मों का मुपति-
 विरा सजता है जो सब सृष्टि पर प्रलय-सहस्र महान् विपत्ति !

धर्म ही है तात ! यह भी कह बताया तुम्हें,
 सति धर्मिणः सुखि-हीनों के न जाने !
 सति धर्मिणः के ही तात है सचित्त बोधा
 सति-मद के सुपरिणाम भय जाने है !
 इमीनिष्ठ सति भितनी ही उठने ही धर्म
 मुक्त सतिमान धर्म जाने सम जाने है
 इमीनिष्ठ धर्म जन सति दिगाने में नहीं,
 म्याय सान्ति बना हाथ जाने पहचान है !

यदि मुरराज ! मिथु मूर्ख कोय धन्य बन
नीति छोड़ दें तो कौन उनके समान है ?
हिन्दु नहीं छोड़ते हैं इसीलिए हैं वे धन्य
एक नहीं तात ! म्याय शक्ति का गिान है !
गन्ध प्रदि भी न करना है जो धनीति जिसे
निज शक्तियों का मरते अधिक ध्यान है
निज मन पर पूरा ध्यान किया है शक्त
विमल मुनेय ! बही मर्यादा शक्तियान है !

तात ! नियम यह मध्य एसी हैं है मुर-गौरव
तकने हैं मर्याद कुछ पाकर बन-बैभव !
अन्यथा एक नाम कोय बन धन्य पाकरता
नहीं मर्यादा तात ! अथवा जन का है सत्कार !
मुरराज गद्गद कंठ जोड़कर बोलें हुए अनाम
तर्जि हृष्ट न मुग्ध देखते बर शिवभूति सनाम
होने "देव ! शया हो अद्विज न वह भूम होवेगी !
अथ न बुद्धि मय कभी धर्म मय विपत्ति न गावेगी !"

मुने ही बर भूति हो गई अन्तर्धान दान्य में
एक नया एक नई न जाने कही प्रभा वह लागे हैं !
शरा भर रहे नहीं लक्ष्मि-नै फिर मुराजने अहमने
बागो सबाधित्य घोषी के मदे मयन-मय भुवने !
अथवा स्वयं भवन होकर हो महमा शिष्टुदरा वादे
घोर शक्ति हो रहे देवकर हस्त दुमरा घादे !
तजग हुए गहने अथवा मुरराज रूप के अन्ति
घोर उग्रने ही अथवा भी अग्रुत निज शक्ति !

वे सब मिल तल्लख जयन्त को ह्रीदे में ले घाए
 घोर त्वरा से फिर पद निज सेना की दिसा बढ़ाए ।
 मुरपति सबे उगी भुज-बल से सीमा मार्ग बनाने
 राग-राग में रात-रात छरि-सेना को यमपुर पहुँचाने ।
 देग घगुर भी गिरा-पुत्र को जो हाथों से जाते
 सबे बडान निज-निज सेना छवित हुए, बल लाने ।
 कहा मँतिको से "यह सब की गुर पंचों की माया
 इनी बाल से जयन्त को है मुरेन्द्र ने से पाया ।
 है पिचकार, बीच सेना में इन्द्र बरकेना पाकर
 निग जा रहा है जयन्त को निर्बल बना उठाकर ।"
 परन्तु मुरपति उनी बिधि छरि को देने नाम
 पहुँच गए स पुत्र को मुर-आहुत-आवाज ।
 चतुर मित्र भी तल्लख छोड़ सब व्यापार
 करने लगे जयन्त के बरगद का उपचार ।
 हमने दिये हुए समुच्चों को कहा घोर भी रीज
 सबे घोर के देने हमके लिए परस्पर रीज ।
 कई लगे देने रट रट निज सेना को बिराद
 कई सबे समुदायिज वर करने कुर्ब बौछर ।
 फिर हमने सब पर प्रतिज्ञा से अधिकार जमाया
 घोर पराजय की लज्जा से उने अधिक बढ़ाया ।
 बँते भी जयन्त बाणों के फुटकारा जाने से
 घोर इन्द्र के जयन्त को ले राग में हूँ जाने से ।
 घागा बँधी प्रहृष्ट ही धगुओं को फिर जब जाने की
 एक बार फिर मुर-बल से सब हलचल बनाने की ।

इसीलिए वे सारे सैनिकों में उत्साह जपाने-
विजय प्राप्ति के अजगर के कल्पित उद्यान दिगाने !
घोड़े सैनिक भी दलपठियों की बातों में भूसे
विजय प्राप्ति की छाया बँधते ही सबके मुख फूँसे !
छिन्न के जयजयों में रह-रह सब को सगे कँपाने
नरोत्तमाह न फिर पुनः हम में सवे बाध पहचाने !

उसी गमय कृष्ण वह धा पहुँचे रण में हाथ बटाने
राजू-बोह पर निज धडा-यस के मुख मुमम बढ़ाने !
सूर्यदेव तो धनम लोह-यात्रा में लय हुए ब-
ल्लं मणि निज दलीली के रंग में रंगे हुए प !
बहु बिबाह-भक्त-नयी बिबल बहु पुष्ट न कर मजठ पे-
हो गुरु-जीना के पय स तम बाधा हर मजठे प !

बडा मंगल ही सबसे प्रथम मेरा को लट लगाडा हुआ
दूने लगा मग भी मत "हँ हँ म्याँ म्याँ" दुष्टराजा हुआ !
देगकर हँसे अमुरलण धीर, अँस्य गिन गिनकर बगने मदे-
देग मून भीम बन उठा अँस्य उगे कृदिबल-अप हमने सगे !
मुरख ने ताड़ दिया यह भाव धी दिया सैनिक गण को बिरल
दिनु यह धनक लँसल भीम-हृदय के लल धों बरने मुगल ?
धन ही जपित उठा मर बाध दिया धंदम ने दग्ग गरा-
लक दान म कर दार-बोद्धार धनु दल में धनित्य दय मर !
बना की जीति पंति की पंति देने ने लल भीम के बागु
दूर दग्ग-महरा की ललह भर जगे यमपुर में धरि बाग !

जल-प्रलयवत् उधकी धर धार बहा ले चली समुद्र तक छात्र
हममगा मोते गामे लगा धतुर संग का कुछ जहाज ।

मेघ भी धरकों को कर मात मचाने लगा बसों में घूम
छात्र ही धर के उनके गुरु न था का हूँ लेते थे घूम ।

देख वह स्वहास्य का परिलाम लये धरि करने पश्चाताप
किन्तु का व्यर्थ पीटना लीक जाता जब क्या हाथ से छीप ।
पर कर क्या न धीर क्या करें ? घुमता था उनको वह भी न
समर न था न माय्य का उन्हें धारना या करना बलहीन ।

तब कुछ छोक समुद्र सेनापतियों ने रज नव ध्वनिव
रज मेड़ियों के कर रिपु-दल में कैसाया पति भय ।
देग मेग जलाशहीन हो लगा द्विचक्र भय लाने
एक बार-बार भय बलने की इच्छा दिगंताने ।
गमक भीम के लक्ष्य मेड़ियों को कर धर छटकारे,
लने भट्टिये भवने ले-ले धानी जान विचारे ।

किन्तु इसी क्षण एक घुमरा समुद्र मेड़िया बमकट
पीले से सा मिरा मेघ पर प्रलय मेघ तमन कर ।
कलक-घुमे मेघ के पय बहु धाव जाता गुरु-दल में-
तब नीच मिरा भवत को दिया समुद्र ने पय में ।
हा-हाकार मचा भवत की धीर लने गुरु बड़ने
उपर समुद्र भी लने घटा-गव रद रद पुन उमड़ने ।

ग राहु के मुल केनु को निज रज में बँठाया-
नीच बिग हो समुद्रों में धावे नीच बड़ाया ।

उड़-सारथी लगा जरण रथ की पति तीव्र बनाने
तथा केतु दोनों हाथों से लगा वृषाण बनाने ।

पिड़ा मुड़ फिर गए बोध में अमूर-बमू धराराई
बिस बिबि लड़े धयर ग्गों छे ममुण्ड ध्यति सदा ?

हुई कठिना एक भगा तो प्रबल बूमरा धाया
उड़ भगाया ता हाथी में छाकर पर जमाया ।
जरण धनय ही मने नाच-मुन मोच-नाच वण करन
भीत छेनिछों के हृदयों में धीर सपिक भव भरन ।

फलन मने मोचन दयानि विम बिबि हा छुटकारा ?
बोला एक "उहू या विवा परने बगु ह्यारा ।

धन उने बह धाद शिवा कर अपनी धार विवासा
विने मद्रमता तो मुर-बन में दूना बीर बुजासा ।
तनिक मुना तो मुरमण का उठ जाणया बि-बाम-
बिना मुड़ ही इन प्रकार हावेगा रिपु का नाश ।"

बहा मुरय मे "विष्णु जान यह जमना बहन कटिन है ।
उनका मुर हूनों में गले बीन जमा जीरन है ।"

प्रमोदक म बना है प्रयत्न मे बना शक्ति ?
धन एक मे विवा उठ राहू निमा प्रमोदक ।

आ करिषय करके फिर बाणा समुद्र बग म हकर,
घाण हो धमुरों मे करने रण बने मुख गावर ?
भूम का बना इग्री मुरों के दल का ना या बन है
कि है तुबक यह धात्र मुग्गाता निरपह युग विजय है !

दिर भी रन बने मुग्गाता के मुम उनक कर मे
बह धमुर-वर अह धात्रुपता बन भाग हा पर म ।

सब से भी बारा हुआ दृष्टि का प्रभाव धरि—
 बन्ध-रूप सबे चाहि नाहि क्यों पुकारने
 ब्रह्म नहीं चाहें जिस धोर उत धोर बस्तु
 ही क्या सबे मत सब कुछ भी विचारने ।

ब्रह्मण्य गुरु की मार से उबर सब सबे ब्रह्मण्य
 फिर केतु भी ब्रह्मण्य के फिर छोड़ा प्रमत्तान ।
 धाई धमुरों के लिए फिर विमत्ता की पछ
 सबे सोचने के पुनः कुछ ब्रह्मण्य उत्पन्न ।

धर्म में उन्होंने उसी नीति का प्रयोग कर
 बिह बन सारी ब्रह्मण्य में ब्रह्मण्य छोड़,
 ब्रह्म धर्म-ब्रह्मण्य उठाए पूछ भाव बता
 ब्रह्मण्य सवाया धर्म देव ने बहुत जोर ।
 बस्तु हैं उठे ब्रह्मण्य अनित्य ब्रह्मण्य सब
 ब्रह्म धर्म करना उठाए बड़े धर्म-ब्रह्मण्य
 धर्मण्य ब्रह्मण्य रिपुओं ने भी ब्रह्मण्य पाप
 धर्म धर्मिण्य को ब्रह्मण्य दिया धर्मण्य धोर ।

देव देव यह कह हो हो निज धर्म सवाए,
 नीच धर्म की धुल के बिह-सहस्र धर्मण्य ।
 धोर धर्मण्य सब पड़ा जा धर्मण्य के बीच
 धर्म धर्मण्य-धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म ।

उपर ब्रह्मण्य धर्म ने भी धर्म धर्मण्य धर्मण्य
 देव धर्मण्य ने धर्म धर्मण्य धर्म धर्म धर्म धर्म ।

धुमिल हुए सारे ग्रह मिसकर सगे मचाने इन्द्र-
बुल बने धमुरों के दमपति सब कीसल-दम-दम्य ।

भीम-भीम-धनि सब सब बाहुन पा धमि हृदय कैंपाते-
सगे धूमने ज्यों गयल तुम बुल का नाम मिटाते ।
इसी समय दुरपति ने धाकर की रण में मसरार-
मुनकर मानो हुआ मैन्य में विण्ठ का मंचार ।
बज्र-गजेंना कर दुरदम ने कैंपा दिया रणराज-
कण्ठ दृष्टि में सगे देखने सब के भागों नेत्र ।
किरगत्ता की मलमलनाहट गुन बढ़ने सर्पों उमरें
रह रह लगी बीर हृदयों में उठने री- तरें !

मुन निज मेना विचल उचर धागया धमुरपति-अभी-
मुनकर विमकी हाट बन उगी धमुरों की हृद-नबी ।
भीम-बर्जना कर उछने भी धमुरा को लनकाय
बोला, "ओ मुर दिन उगने हैं मुनकर नाम तुम्हारा
उनके सम्मुख होते हो तुम यों बल-विचल धवीर ?
रतनी मार ! दृष्ट मार के हो काम्यार्थी बीर ।

मगे विगाधारिण उ रहार करते एक भयानक
लगी बलि की सय प्रगल्भ दम सं बही धवानक ।
बही बरगने सर्पों धति धांगिनी की बही दृष्टार-
बही लगी उरकों की बरी बरने मय-मंचार !

धरना हाव दिगार देना कठिन होगया जब को-
उमार लंग बरगद उगने में नैतिक-बालक वा !

बस पकड़ा धमुरों ने सारा मुरदस पड़ा विपति में
 भूम गए वह पण भी सारी इति-गति इस दुर्गति में ।
 सभी विद्याधों में रिपु करने लगे मुखि किमकारी
 बड़ने सभी धमुरों की भर-भर फिर हुंकारी ।

बना उठी छल मुड में एक नवीन बनाव
 बरस लगे मजकर जिसे धमुरों तक के भाव ।

मुरख धीर बुध मध्य जिज्ञा का तुमुन बाउ-संधाम
 दोनों कपस धमुरों की दोनो के बलपाव ।
 छल छल किट न पर कोई भी धरि पर लय पावा का
 दोनों विद्या बाउ जो छाता वह ही कट जावा का ।
 धना मुरख का मज कठिण हो बुध ने बीच विद्या
 एवं यह सापाठ मुरख की दृष्टि में नहीं छाया ।

धनतः मज के साथ-साथ ही मुरख गिरा भुगत वर
 देरा उबर बुध भी जा पहुँचा निवट मुरख उदगकर ।
 धीर मुरख सम्भले सब तक वह जा बैद्य छावी वर
 मज उठे मुर भी लय बुध की लय पावे पाठी पर ।
 हा-हाकार मजा धमुरों में हुमा भीति-मंथार
 उबर लय पर वर वर, वरते हुए धीर हुंकार
 बुध ने कहा मुरख के धव हो मरने को तैयार
 का प्रल कर कि न लैया फिर मुरखण विरुद्ध हविषार ।
 बहा मुरख के भी तयार हूँ मैं हाँ करो प्रहार
 धावा करो न मैं कोई लय बुना हो तावार ।
 मुन मजोब ने लंघ विद्यावर-मुन ने हथ उठाया
 बिनु दली छाता धवि ने 'है-है' कर बुध को चक्राया ।

कुप में क्षुब्ध दिखा देगा यदि बोसे 'क्या करते हो ?
पतित धनु पर धम उठा जीवन में धप भरते हो ?

सलिक साम के लिए यों तब स्वयं की राह;
क्या साथे गुर-नाम पर, त्रिव तुम धमरकमड ?

छिर क्या यह बीरत्व मुरख का है इस नय के धोम ?
गोचो ! नम बिधि बनने हा तुम बायरना के नाम !

मन गढ़गा मानो कुप को भी मुनीति की स्मृति धारै
जब मन में मूम समझ, निज नीची दृष्टि भुलारै !
राहु भर कुप यह बोला 'मुझको समा करें हो कुछ
भूम गया था मैं कि आचरण है यह नीति-बिगड़ !"

छिर धनि नन कर, निज कर का है गुर मुरख का आघव
उठा कहा "निज दल में आघो बीर भले ही निर्मल !

भून जाइये हम अधिनय को जो या रोगापीन
बैसे मुरखल में पाएंगे धनुर धनीति कभी न !
हैं यह बिचारने का सजना है फिर भार तुम्हारे
कि है वही तक उचित धाम का मुँह दिगड़ हमारे !
जो बीरत्व दिखाया है तुमने नम वस्त्रि प्रहर में
क्या है सोभाएह उनका उपयोग धनीति-मधर में ?

इतना माने बार धमर धावाँला हा छिर धाना
एवं धानी गृह नगर की मन घर गुरु बुझाता !

गुरु ! नहीं है देवदूत को जिमा प्यारी
स्वयंभवा रसायं बिजय है यह अपारी

धन्यता न है लेख हय हमको धमुरों से
रण में भी न मिलेगी तुमको धन्य धुरों से ।
धमुर करें चाहे कपट धुर बरखें नीति ही
धुर करते हैं समर भी भरि प्रति रखकर नीति ही ।”

मुन वद-वद हो धुरय ने कुप से कहा सखीति
“जय न कर यकी भी जिसे धुर-सेना की भीति ।

धुर सेना की भीति धीर सखाम-धुपमता
धीन सखी है उसे धायकी धर्म-मदमता ।
निज ! न धन से धुरय धन्य का भागी होया
इस रण में भी वह धन-नय का स्वागी होया ।

रण सेना में धायी धर, किन्तु नहीं है धर्म
धीन कुड में छोड़ना धन्य स्वीकृत धर्म ।”

कह प्रणाम कर वह गया निज सेना की धोर
कुप की धायी को बड़ा मुन होवा कुप धोर ।

हेना निज-निज धमुर ने यह कुप-धुरय धर्म
उन नव ही पर बड़ जमा इस नव-नय का रंग ।
निरधर करने लगे है लखने की धन-नीति
नव करने को समर सत्य-नहित लख भीति ।

किन्तु इसी धण्ड उम धन धा की धनी ने धुवार
जिसे देग माको धमुरों पर बरनी धनुर-धुवार !
धिर धामुरी धाय ने उमरर धा धायिधर जमाया
धिर धिदुधन उनसे धुरों में नव-नय धर धाया ।

शिगुल बेप छे बे मुरखल पर मने घात्रमण करने
राम-शत्रु जय बोपों छे उनके मगी भूमि परहरने !

उपर दूट भी मानो वाकर विद्युत छे सन्ध्या
आ पहुँच रक्षाक परिय ले मानो क्षुभित मृगेय !

कर मजन परियल पर दूट, बड़ा मुरी में राप
माछमार मची सब मैमिक बड़ किए घात्रोय !
झकी बग मे बस बटारें करन मगी बिहार
जमी "धिनमस्ता" पद्-गब् कर भरठी रण दूवार !

बिफट हा बर्बा रण-दया मिड़ मगी प्रण टान
या छे पाएंगे विजय या रे बने प्राण !

उपर मुक की घमि मगी बग्ने उपर बिहाय
देग जिसे गिर हा रहा पवन भून नबार !

करके हुद्दार मुक मगी तमबार जानी
तड़ित पनों की निर तीव्रता दिगान मगी
नव योदना की तीरण दृष्टि की मजानी भिर
मैबड़ों बितों की चिल भ्रूर मिछने मगी !
स्वाधियों की विजय-नी माया की बिबिजय-नी
भुगवानी जो मित्त उमे ही मार गान मदी-
बाछनना बेनी पान गाण जिमने हूय
मदी उम ही की साज साज मे बनान मगी !

देग मुह-मय भी बड़े प्रवन दूध-मय
गर्जना मे भूमि पर रह भरछने मदी-
रगुया की धाग बड़ी हूँ हाधियों की मैम
मय हीन बिया की मनिहा बनाने मगी !

पर्वों की विचार, लसकार रस-वाँकुरों की
झट्टों की घसत ध्वनि धम्मर हिमाने लयी
शेष मृत पर्वों की धगधग पंक्तियों को भर
भीत पारवती पजरज को बिपाने लयी ।

धम्मकार छोटा पड़ते ही रण की विधि—
रसा होता ही बसों की दृष्टि मध्य धाने लयी
धीपल धवावली विभीषिकाओं से प्रभुर्ल
मुद भूमि भीरवों का हृदय कंपने लयी ।
धनु-संन्य देव लगी दियारा में सुर-वीर
विजय की धारा छोड़ धीकन बचाने लयी
बाँव जिम बभ्रु का सपा बही बचावो बाँध
देवों को मनाती मौ-बो-म्यारु ममाने लयी ।

ऐसे ही समय घात-पात के प्रवेस में से
मुझे मुवावृत्त भीर वेष में लजे-सवाए
मानुभूमि रसगुणार्थ मुद में बटाने हुए
उमविन बित मुददेव के निष्ठ धाए ।
मुद जानने ही वे दगा को मुद-योग की बह
देव हम संन्य को प्रमत्त हुए, मुववाए
बने बह स्वय दत्ताधीय और संनिकों को
गूह-बड क्रिण धनु-पिक्किर्तों की ओर धाए ।
इनमें वे धविवाय मुवा के जिह्वें धमरय गिताकर,
प्रष्ट बनाया बा दिन में धगुरों के विषय बनाकर ।
या जिह्वे हुए धमर हुए ब कृण के ध्यक्ति मरे ब
हमीविण धमुरा प्रति उनमें लामे भाव मरे ब ।

घटस्मात् गुह-सैन्य का, यह अभिनय भाषात-
घमुर-सैन्य के लिए वा अमभ विद्युत-पात !

इसीलिए ऐसा चारणा-विषय भाषा देन
मुद्रात धीर-धीरों का भी धैर्य सूट गया
शेखर-विवाहिता-गुहाय सम दैत्य भाष्य
भाग्य रवि जावन के प्रथम ही फूट गया !
दूट गई गृहमा विगृहस्त हो भाये सब
ज्यों प्रपुल्ल तास का विद्यास बाँध दूट गया
सभी लव कोमले विद्याता का विद्युम्ब हुए,
जो वा वल ता प्रसन्न और सारा कूट गया !

भावे विष्णु मयभीत धरि, जिसको विषय की बुन लगी
ज्यों देत बाबानल-वसित बन हरिल-धेली उठ लगी !
भागे घमुर पीछे भुरों का दस बसा सप्तवारवा
स्वात्तामुपी छे ज्यों प्रवल लावा बसा पुवारवा !

धरि भाग बने निर विविध छोड़ बर्षा-नर-बल ज्यों कुल छोड़ !
रह याग लगी संशय सार, धारानी, हन गत्र उड़ बाशि !
मुद्रर विद्यान उड़ने विद्यान धरत्राय धरत्राय विमान !
हम मान-रीन, हषरीन याग मणि रत्न-नाग गुण उगागन !
भावे बोर्ड पर लामु बर कारीन लमा बरदे महेय !
बाई से धनुष बंदर राग बन गुण बहावन या मयाम !
बोई मुगार, बोई बमार, बोई धोबी बोई मुगार !
गुण बने मून गुण दारगात गुण भांड भाट गुण धोर-भगन !
गुण बमारी गुण बीरगात गुण बरी भायक भट्ट ध्याक !
गुण का भाग व वरद नैय्य गुण बने करना वा मेन देन !

कुछ बन-बूखों पर चढ़े भाग' कुछ धिये बनों में पल्ल त्याग ।
 कुछ मूठ डेरों में गए बैठ; कुछ पेट बड़ा बन गए छेड़ ।
 कुछ निर्बल साधो को उतार; उसके बाहुन पर हो सवार ।
 सब जैसे जिवर का बँबा ध्यान' यस का न बिधा का रहा ज्ञान ।

कुछ जल घरे मुर-बप घर, पकड़ो घरो ललकारते
 निज संन्य को सेनाधियों को नृपति को विकारते ।
 सब देवपण की इन्द्र की बुद्धि की उल्लारते
 मन में मुरों को धाप देते और अउमय मारते ।

हिरण्यकश्यप मज्जाकड़ हो धाप रहा था
 बाहु-बैज से मुर-नीमा को त्याग रहा था
 पीछे-पीछे एक माग में भी सज्जु रानी
 जिसको घरे हुए जल रहे के सेनाधी ।
 माय-साय सा रही भी एक और भी पालकी
 नर लज्जती भी को नहीं समता पत्र की पालकी ।

इस ही में भी मर्मबती जग्रावति विपुली
 दिव्य विविध प्रह्लाद भाऊ की या गुण-बहिषी-
 रानी ने गुण हिरण्यकश्यप को गुनवाकर,
 कहा प्रेम गुण 'घाप प्रया पर जमिन हुआ कर
 मुझे छोड़ मुर-सीम से सार्वर बार हो जाइए
 मेरे लिए न रंज भी बिबिधा मन में लाइए ।

मैं यदि रिपु के हाथ बन्दिनी हो जाऊँगी
 तो भी निश्चय मैं न कहूँ गुण भी पाईगी-
 प्रवमाओं को कभी देवपण नहीं गता
 योग बन्दिनों को तो तब भी नहीं दिगाने !

घात घात निरिधत हो निज पथ पर भागे बड़े
ऐसा न हो कि भागकर भी धरि के हृत्प बड़े।"

इसी समय बिहास बने नृध र्धनिध धातु,
नुर सेना के धान के मन्वाध मुनाध;
निराध नृध ने धूम्य दिधा निज इष्टि उठाई
प्रथम बार जीवन में स्मृति ईश्वर की छाई।

यानी मुमकाई, नृपति सज्जित हो निज पथ पर
गुलं बेध रो पासकी छोड़ वही भागे बड़े।

किन्तु भागकर भी न धमुरपति नृधन स बध पाया
नुर-सेना की एक धमू ने धा ही उसे बचाया।
देख धमुरपति के साथी निज धातु बचाकर भागे
हिरण्यकश्यप गहिल वहाँ के वहाँ धरप तक रपाने।
कोई बड़ा बड़ा धर कोई धिया भाग जारी धं-
कोई बट धया नृधन हो किमी धर्त-धारी धं।
वर्धन समय धमुरेग का छोड़ बने मय हाथ
मृत्यु मय ज्यों धूमि-धन धर देने धं गाथ।

उपर गति का बना हुआ नृधन धमिध-मा होकर
इसी स्थान के निकट भा रहा था मय धिया गाथर।
धभी धभी बह धमिध धनों के धर धरि न धरकर
देग रहा था नृध धामनावी धिरलों का धु पर।

मेत रहे धे वही मुगाधिर, पत्नी बहो धनेध-
धी-धी धरके धु जा रहा था धूम्य धरीधर धध।

देग धामने हिरण्यकश्यप को धर्धध धनुधागा
रहा हुआ नृधन नृध धमिध होना नृध धरधगा

कुछ बग-बूटों पर चढ़े भाग कुछ छिपे बनों में पल्य स्थान !
कुछ मृग डेरों में गए बैठ, कुछ पैट बढ़ा बन गए सेठ !
कुछ निर्बल साथी को छतार, उसके बाहुन पर हो सवार !
भय बसे बिचर का बेबा ध्यान बस का न विद्या का रहा ज्ञान !

कुछ बस धरे गुर-बप बर, पकड़ा बरो लमकारते;
निज सेव्य को सेवानियों को, नृपति की पिकारते !
जय देवयल की इन्द्र की सुरदेव की उच्चारते
मन में सुरों को धाप बैठ और धसमय मारते !

हिरण्यकश्यप मज्जाक हो भाग रहा था
बापु-देव से गुर-सीमा को स्थान रहा था
पीछे-पीछे एक मान में थी लघु रानी
बिमलो धरे हुए बस रहे थे सेवानी !

साध-भाव था रही थी एक और भी वात्सकी
कर लकड़ी की जो नहीं समझा यज्ञ की चान की !

इस ही में थी गर्भवती चन्द्रावति विदुषी
बिरल बिदिन प्रह्लाद मल्ल की या गुण-सहिषी
रानी ने गुण हिरण्यकश्यप को कुमराकर
कहा प्रेम गुन "भाप प्रजा पर धमिल कृपा कर

मुझे छोड़ गुर-सीमा से सत्वर पार हो जाए
मेरे लिए न रंज भी द्विदिधा मन में लाए !

मैं यदि रिगु के हाथ बन्दिनी हो जाऊँगी
ता भी निश्चय है न बट कुछ भी बाईबा
धनपापों को नभी देवयग नहीं मगाने
धीन बन्धियों को ता भय भी नहीं रिगान !

यत धाप निरिचल हो नित्र पल पर घाय बड़े
एमान हो कि भागकर भी धरि के हलके बड़े।"

इसी समय बेहाम बन कुछ सैनिक घाय,
मुर सेना के घाय क सम्बाध मुनाए
निघाय मुर मे पुन्य दिया नित्र दृष्टि उगाई
प्रथम बार जीवन मे स्मृति स्वर की घाई !

छाना मुमराई मुपति सज्जित हा नित्र पल पर
पूरा बेम म पासचा छा बही घाय बड़े।

बिनु भागकर भी म समुपति मुरल म बल पाया
मुर सेना की एक बमु मे छा ही उमे दबाया।
बेम समुपति के साथी नित्र प्राण बचाकर भागे
हिरण्यवदन गहिन जहाँ के नहीं पल्ल ठक स्यागे।
कोई बड़ा बुरा पद, कोई दिया भाग छाड़ी के
कोई बेट यया मुरल हा बिनी मृगशी मे।
कटि समय समुपति का छा बने सब हाथ
मृगु समय उगी भूमि पल लत्र मे है साथ।

उपर गति का बला हया कुरल समित-मा हाव
हमा स्थान क निवृ मा छा या मर बिना गावर।
धभी धभी बर सति हमा के बर लगी मे बदल
देग छा या मृग बाधपायी बिगलों का धु पर।
गम रहे य बही मदादिग पली बही घने
बीना बरक मृग छा का मृग परीत एक।

देग मायने हिरण्यवदन का घन मृगगा
मदा हया कुरल मृग बरिग हागा मृग परगा

किर पूछा क्यों धाप घाँसेली यहाँ किस तरह धाए ?
अधुराज ने भी बिग बोले मुर-सगिक दिखसाए ।

हेल लगी कृपामय को न कुछ देर समझने में सब
उसने कहा "धाप इस भाँती में चुप हो बैठे धर ।
मैं जाता हूँ धनु से करने दो-दो बात
धापा है हुँगा सफल बिना बात प्रतिपाठ ।
पर प्रयत्न असफल रहा तो फिर होना हथ
तब तक सेवा धाप कर कुछ रत्नार्थ प्रयत्न ।"
कह उसने धारण किया अपना सगिक रूप
हेल अधुराज-हृदय भी धापा कुछ भावैष ।

बोले "रख हो तो न दुबना एकाकी रख-सर में
छोटे दोनों मिलकर ही धाव समर में ।
या तो दोनों सब निकले या दोनों नष्ट होकर
उठ ! कहते हैं धन इन ही को भाव्य-नक का कर ।
यही बात या कम एवं धर भी है यही प्रभाव
किन्तु बना है यह धनुरों के लिए धमा की धग ।

जिन्हें विनाई गुना मय मा के पशु तब भरने को
धीर दुबाया भिने—बह गुम्ही हो प्रसन्न करने को !
सब है बटुभापी ही देने हैं बटु बत में काम
अनुमत्ती ही करती है तब-मुक्त धर्म संधान ।"
सुविद्य हो कृपामय ने कहा "मय प्रभु मे पाया है-
नारी धाव धापकी मवा कर गमा-गाया है ।
यदि इस धाव न काम धापा ता फिर बिग बिग धाईया ?"
फिर बोला "रत्न में तो मैं लकावी ही खाँसा ।

मेरे रहते पहुँच गई यदि स्वाधी की कुछ हानि-
तो हो जाएगा मेरा जीवन व्यर्थ समान ।
घत भाप तो रहूँ छिड़ते ही धाग पर बढ़ाएँ,
कोई रखा स्थान देगकर अपने प्राण बचाएँ !
मेरे लिए न चिन्ता कीजें सदा सरय के बस है
मैं निरन्तर रोहू या तब तक धरि को रहूँ-कौसल है ।”

कह लेकर धर जाय बढ़ा बढ़ मुर-सेना की ओर
जमा था रहा था मुर-दल भी करता वर्जन धोर ।
बेला-सोच कृपयन्त भाग में चढ़कर ऊँचे स्थल पर
राह देखन लया शत्रु घाने की निष्ण प्रथम पर ।

किन्तु मुरों में देल लिया लमका एवं शक्ति हा-
भेजा एक मैमनायक की जो सब भद विदित हो ।
मायक न जा निकट देग पूछा बलपति का नाम
पर बोला कृपयन्त तुम्हें इन बातों से क्या बाम ?
मायक भावा समी नपर की आया है अगुने-
किर है मुरमात्र की कुछ दारा दग तुम्हारा देग ।
पर बोला कृपयन्त किनु हमसे क्या ? क्या करने हो ?
तुम मुर हाकर भगे धनु का पीछा क्यों करत हो ?
मरपनिष्ठ मुरगुन पड़ गया यह गुन सममज्जम व-
माया गब तो है हम है गबमुप विचार के बस में ।
दली गमय मुर-मगपति भी भँव निग बई गमानी
घा बापा “क्या गब होता है तुमने मनिब-आमी ?

क्या है तुमको जीति सखी निज प्रालों के जाने की
 प्रसन्नता धरि हो बाट दैकते मे मुर-दल जाने की ?
 यदि हो पवित्र बसे जाधो में सख्य साज दैता हूँ
 सब दाधित्व स्वर्ग-सीमा मे रसख का सेता हूँ ।
 यदि हो सखु, तो प्रसट होकर निज सत्वात्म सम्हाधो
 रख करने के धाने धन क मर धरमान निकालो !
 किन्तु धकेले हो न धत हो जब तक समुचित कारण
 सब तक मुर न करेये सत्य विद्वत् तुम्हारे धारण !
 मुन स्वभावका यह निज हो मुर-दलपति से बोला
 भेद धापके यहकर पर धेने न है धभी धोला !
 किन्तु जब मुझे देन धकेला प्रसन्न निज निरुधाय
 धाप समझने है मुझपर प्रहार करमा अन्याय
 सब फिर धने सखु क पीछ है क्या यह धर-भार ?
 मुर हो क्यों है किया धाने धमुर-नाम स्वीकार ?
 बीरधष्ट ! मैं हूँ वास्तव में धमुरराज का धमुर
 तब बँटा है हम बल पर धान यही निरुधय कर
 कि जा न मुरमण म्याव-मुक्त मेरी धमुरय को धाने
 एवं धमुरराज का पीछा ही करन की टावे
 तो फिर डटकर यही प्राणधम नि मंशान बचाऊ
 हूँ मैं धमुर तबानि मुरा को धान स्वधर्म मिटाऊँ !
 धन धाप या तो धपनी मेला को ही फिर धाने
 प्रसन्नता बाध जा जयनी मुजार्ब मुनय्य बनाने !
 जाने दूना मैं न धापनी धर विा नर भी धाने
 न धा न हम न हम रने जाये मुनय धाने ।

यदि रख ही करना हो तो फिर पाओ करो तयारी
 एक-एक कर गुड़ करो या निनकर सेना सारी !
 तुम समझ, मैं एक हूँ तुम बिजयी, मैं भीत
 फिर भी देखें जगिन्ना देखे किमको भीत ?
 ही बजने वा बुदुसी छिप्ने को रत्नभीत
 सरस बनी है या हि बन कर नें घाव प्रनीति !

फिर बोला 'यह भी न करें जब हि नम चादि छाएगा
 मुर मल वा कुण्डल धामुगी रण कर दहलाएगा !
 मोठ गया बह समय माय जब एत मुमने पाना या
 जब मुमने घर्जों प्रति कोरत मैं धार्ज्य भागा या !
 जब मैं तुम भिन्न रण के परिचित हो वह दुःख बह गा
 भाव हुए पर हम जीवन में एत-विन फिर न भक गा !"

मुन मुर उमरति बनिन हो बोला "बया कृष्ण ?
 निया देखति पुरी न या भिगने रण घन ?
 भिन्न धनुषनि मे निया वा प्रागुत्पन्न दण्ड ?
 मुरप-मुनि ही रण गरी भिन्नरी देह घण्ट ?"

कृष्ण भी बनिन हुआ यद देण दि मारी वा
 है मुर-मेना एवं दनाति को घण्टा घात !
 तथा मउर्य बहा ही है मैं वही बुद्ध कृष्ण
 और मुझे है एवं उम घनव वा करने पर घन !

मुर दनाति ने कहा घोरदिर भी धनुषनि-धन
 घात हो मुन रण के मोने घात जीवन ध्वंस ?
 कृष्ण ने कहा 'यह वा नर निज वर वर घना
 घोर धर्म है एक रण नर रणार्थ घन हो मरना !

क्या है तुमको भीति लगी निज प्रार्थनों के जाने की;
 भबवा धरि ही बाट देखते थे गुरु-दत्त जाने की ?
 यदि हो पवित्र जलें जाघो में सम्य साज देता है
 सब बाहिर स्वर्ग-सीमा में रखण का नेता है !
 यदि हो सब, तो प्रबट होकर निज शस्त्रास्त्र सम्हालो-
 रख करके के अपने मन क सब धरमान निकालो !

किन्तु धकसे हो न घटा हो जब तक समुचित कारण
 सब तक गुरु न करेंगे अस्त्र बिस्त्र तुम्हारे पारण !"

मुन स्वमानन ॥॥ विनम्र हां गुरु-बलपति से बीमा
 "भेद आपके सहचर पर मैंने न है धमी सीता !
 किन्तु जब मुझ देल धकेना सबका दिन निरुपाय
 आप समझें हैं मुझपर प्रहार करना अस्याय
 सब फिर भये सबु क पीछ है क्या यह पर-भार ?
 गुरु हो क्यों है किया आपने समुद्र-नाम स्वीकार ?

वीरपण्ड ! मैं हूँ वास्तव में समुद्रराज का अनुचर
 एवं बैठा हूँ इस जल पर आज यही निश्चय कर
 कि जो न गुरुमग्न व्याध-मुक्त मेरी अनुचर को जाने
 एवं समुद्रराज का पीछा ही करने की ठाने
 तो फिर बटकर यही प्राणप्रण मे मंत्राव सचाइ
 हूँ मैं समुद्र तबारि मुरा को आज स्वयं पिपाई !

अब आप या तो अपनी रक्षा को ही फिर जाएँ
 सबका कारण जा उनको मुझसे समझ बनाएँ !
 जाने दूंगा मैं न आपकी सब जिन भय भी आप
 न ना न हम न हम रहन जाते भूतन भावें !

प्रसार विजय

यदि रण ही करना हो तो फिर भाग्यो करो तयारी
एक-एक कर मुठ करो या मिलकर सेना सारी !

तुम ससम्य, मैं एक हूँ तुम बिजयी मैं भीत
फिर भी देखें जण्डिया देखे किसको भीत ?
हाँ बजने दो बुदुमी छिड़ने दो रणवीर
मरण बली है या कि बस कर लें भाग्य प्रतीति !

फिर बोला 'यह भी न करें भय कि तम आदि दायना'
सुर मम को कृपवन्त आगुरी रण कर रहसाएका !
भीत गया वह समय मान जब दम मुझमें पाठा था
जब मुझको प्रमो प्रति कोषल में धार्मिक धाता था !
अब मैं तुम विल रण से परिचित हो वह मुठ कर दा
झात हुए पर हम जीवन में दम-विप फिर न भूक दा !"

तुम सुर-वसतिपति अकित हो बोला "क्या कुरदन्त ?
निया बेजगति गुरी में या तिमने रण धम्य ?
त्रिमे घनुरपति मे निया का प्रागुल्लक दण्ड ?
गुरद-मुक्ति ही रण लकी तिमकी देह पगण्ड ?

कुरदन्त भी अकित हुआ यह देख कि मारी का
है सुर-नीका एवं दुरपति को घनुरण झात !
तथा तनय बहा ही हैं मैं वही तुम्ह कुरदन्त,
घोर मुझे है गर्व उम घनय का करने पर घम्य !

सुर दमर्तित ने कहा घोरफिर भी घनुरपति-धर्म
घम्य हा तुम रण में जाने घमना जीवन धर्म ?
कुरदन्त न कहा "धर्म का नव त्रिज घम पर घमना
घोर धर्म है हम समय सुर गमार्ध घम्य हो नहना !

सभी बीरवर ! जग में निम्न-निम्न कृति का पद पाते हैं
 अत मूर्ख हैं वे जिन को पर की कृति पर जाते हैं ।”

बसपति बोला पापी का रक्षा भी है अथ रक्ष
 वृषभवल्लभ ने कहा ‘ठीक है यद्यपि वे भी लक्षणा
 किन्तु प्रथम तो है वह हम क्षण विरत सभी बातों से
 फिर है कुछ सम्भव न हम रक्षा का मन्त्रपात्रों से ।

मृग ने है सहाय मांगी है मीने की स्वीकार
 निश्चय है यह भी कि कार्य मेरा है मय-अनुसार ।
 फिर अथ मैं भागी होना या प्रीत्याह्न अभिहित है
 बोपी की रक्षा संसृति तो प्रायः सदा अहित है ।
 अतः चाहता नहीं देणमा मैं मृग के वत-कर्म ।
 मुझे देणमा है यह क्या है इस क्षण मेरा धर्म ?”

मृग मुर-दलाति प्रवित हो बोला “दलाति अर्थ !
 अमुरों में यह पद-वृत्ति है सचमुच आरक्ष्य !
 फिर तुम तो अमुरेय के सेनाप्यत प्रवीण
 तो भी हो जल कमलगत अमुर भार से हीन ।”

फिर आये वृषभवल्लभ की सप्रम हृदय समाया
 बोला “अन्य अर्थ है जिसने है तुम नम नून पाया ।
 बीर ! तुम्हारे लिये देणम सच कुछ भी भवते है
 सत्यनिष्ठ की सेवा में हम अनि तक हो गयते हैं ।
 नितरा घुम होना, यदि ऐसा ही होना अमुरेय
 तब न चम्पु हो आज मित हान य दोनों देय ।
 अम्पु बीरवर ! अथ हम रण जग में ही फिर जायें
 बिन्ना सभी न मुरगण अथ पीछा करने आये ।

प्रहार विजय

निश्चय मित्र ! जनय है भगते धरि पर राख प्रहार
किन्तु धनुर प्रति ना तरण-हृदयों में प्रीति धपार !
धीर नहीं कह सकता यदि तुम माथ में न छा पाते
तो धनुराधिप आज कीन-सी दुर्गति पुर कर पाते ?
धक्का होता जगह तुम्हारी कोई धम्य प्रवीर
तो छिर बह जाहे होता बिना ही हड रागधीर
कभी न आज पुरों के कर से बह जीविन बच पाता
न ही धनुरपति बिगी भांति मम कर से बचने पाता !”

मुन मद्गद हृदय से माना धति धामार
बहा रहेगा धातु भर, जीवित यह उपकार !
मित्र नहीं है धनुर मर धनुष्यत्व से हीन
उनमें भी है बंध की संसृति वधवि क्षीण !
हम विधि निज मृग को बचा कर सब बांदिन नाम
विश हथा हृदय कर नबको प्रेम प्रणाम ।



पचम सर्ग

नुर सीमा से नैम्य सह भिन्न गया समुद्र-
मुन मुरेख मे भी दिया नुरमण को धारेण ।

“सहस्रनिक रण-विरत हो लोटें निज-निज पास
या अवलत गर-भूल वर बन कर लें विधाव ।
बल कर लें विधाव प्रमुग मेनापति जाए
सीमा पर सब घोर मुहड़ बोधिया बिगाए ।
दुष्ट नुपीय वर मत्र-नैम्य के पीछे जाए,
घोर शत्रु की नव गति-विधि का बडा लपाए ।”

प्रह्लाद विजय

लज्जात रणसिंहा समर से लौटने का फुँट मपा
कर मुरों का मुग़ त्रिभुज जिस वसत था वहीं पर रुक गया !
कुछ देर में ही प्रायः सब हम प्रभुग दल में था मिले
उत्तरा मया सब धामि का करने सभी अनुभव जमे !

घाने पर सब दलों के राजा दूष का सम
जिग खबल कर बिहूष मूष हिर हो जने गमदू !

पल्लि-बड हो जयपोरों मे धूम्य बुझाते
बड़े समय बाग़ विजय-मल्ल घाने इटलाते !
घररमातू पक्ष म ही रिमल मुरराज मिल पण्ड
देग मोद मे मुरगण के मुग-जमान मिल बाग !

मभुग घा मत जिर सभी बख-भुग-ने रुक पाण्ड
मानो थडा भार म लागों मुर तिर भूक पण !

मुरपति मे भी रिमल मुग की सबकी सदाहना
"बन्ध मुरा ! कहने है हमको सग निबाहना !
मुमने निज स्वार्थम्य प्रेम सबको दिगा दिया
बीर पर्व का बाड बाजदग़ को मिगा दिया !

सब जयज सर नर बरा बाज बरी बिपारि म
प्रात जमेने पुरी का हा बिमुल सदा बरानि मे !"

दिर करने जयपोर समय के बीर बड़ापा
मानो बड़ने हूण गहार मे दपटा गावा !
मनिद-भग के मुक्क-मुपम म्नाग जद उगा
रीर हा बगला गृगार के प्रम पद उगा !

गब निज निज वृति की कप घाग म बहन लवे
दिर मरदे मन म प्रहृम प्रम-गग बड़े लय !

मग में उनके बिजयी का अभिमान बरा था
स्वतंत्रता का सर्वाधिक सम्मान बरा था !
गुर-गुर बसने पर स्वायत्त के गुग-गौरव के
परिजन से मिलने के नवमुख के उद्गूष के-

बिज कल्पना घसक ही रप-रैमकर रत्न रही थी
भविष्य का प्रत्येक के पुरा दृग्ग मिष्ट रही थी !

विष्णु सौम्य के इन सुमनों में कष्टक भी थे
वीरव-पिरि पर अहि-कुदिक-सम दंडक भी थे !
बिजय न भी यह गुड रत्न में खनी हुई थी
वीति-बुटी यह मर-हत्या पर बनी हुई थी !

इसीलिए वे विपु-दया पर भी दुःख करने लगे
हठों पाहूतों की कषा पर निदबास भरने लगे !

किंतु ही निज हृत्त मिशों को सदे बिनाने
घोर लगे किंतु ही दखार घब बहावे !
लगे झुलने, घाये बड़कर दीर्घ बीपाने
जीवन की अभिरपत्रा के मिश्रान्न मुवाने !

किंतु ही निज जनों के घम्ट देग सब बरत ना
घयराग करने लगे करगाकर विवेक का !

हमी भाँति भर गल्ला-वन में कुन्ते बूट
घा गहुँके धरि गिबिर में जयन्त-मरक बूट !
गहू-गिबिर में ही मगा गुर बम-गिबिर घगूरा
घट प्रहर पदचारू भू पर उगरे गुर भूत !

विष्णु का उनको बिचना बड़ी मग गमय भी गमुबिन विधान ?
बर्ग क ज्ञाना का बिज पनी नहीं रतना जग म कुलवान ?

प्रह्लाद विजय

एक कुल का भी बनना प्रसूत बना देता है जीवन-भार
घनेकों के गुण-गुण का ध्याम घनेकों के विभिन्न व्यवहार
घोर धाव-धवला को जान पूर्ण करना सबकी समान
व्यक्तिगत गुण-माधन अधिभार, धर्म पर कर देना बलिदान
धारि बन जानें हैं वर्तमान कार्य बहुत हैं निरुपनि नम्य
एक भी धूम न दग कर्तव्य में पिनी जाती है क्षम्य ।

उस करोड़ों के कुल के प्रमुख व्यक्ति का है जिने पर मिया
करोड़ों ने ही जिय निरुक्त विना को वही पर है विद्या
कहाँ ही मरता है विम समय विस्तारों का उमड़ी धन ?
निबट गजने है उमक वहाँ दगपादावत धर्म धन ?
धन मेना को उगवत-मध्य भवकर करने को धाराम
घोर मुदर को पड़े का गिरि प्रम स करके उन्हें प्रणाम
धोम दारनाम बबल गिरनाम बँट पार्य हैं नष्टि विरयान
देने को धारन धाराम गुण नरपति ने विद्या प्रदान ।

जयन्त का वग में धारि धार भग्न धरान्त
देग दूषा गजनाम को गार तथा धामन !
दिर बमन मर दारनाम करके धामन
धर्म बधना उन्हें भी कर गजे-गुन बन !

देग दूर दूषा उ गजोय विविगा का का उचित धरप-
नहीं का निरय का गुण धर्म गुण का का न वही भी नम्य !
देग दारनाम का धामन बंधना धामन-गुण का धर्म
धनेका का धामन बंधा निबट दूषा धर्म माना धर्म !

मातृ भगिनी का-सा सुनि प्रेम कार्य-विमृष्टा तत्परता धामि-
 व्यभिक्त से व्यभिक्त-हृदय की सुरत मिटा देती भी धापी क्लान्ति !
 तदपि विसर्गों ही की शत विसत-मेहु, पीड़ा से हाहाकार-
 स्वन कम्बल चुन बैस सुरेश-हृदय हो पठा सोक साधार !

प्रवस्था भी भी ऐसी ही कुन्तर दुर्दृष्ट्यों से परिपूर्ण
 कि जिसको देख बज्रवत् कठिन हृदय भी हो सकते थे चूर्ण !

कुछ रोते थे कण-पीड़ा से कुछ मरने से बचपते थे-
 कुछ निज कटुस्त्रियों को सुमिरत कर-कर सोकाधु बहाते थे ।
 विरहात्त नहीं करता था फिर निज ब्रह्म जा एकने का कोई
 पोषक-बिहीन परिवारों को भीविष्ट या मरने का काई ।
 काई निज दम्पति माता की स्मृति से विह्वल हो जाता था
 कोई निज कसब बचा मे वित्त श्रोताओं का सहसाता था ।

कुछ दृष्टि थे पूर्णों मरते पत्नी से भरपा बिग बिना
 निज जीवन-साधनार्थ उनको कुछ साधन-अभिधा दिग बिना
 कुछ पैनकर व्यर्थ प्रमोदन में छिरकर निज शिखा माता के-
 से मर धाए, पब करते थे रो रो छरिवा बिधाना मे !
 सबका था जीवन एक बसण दुग्ध-पटमावतियों की बाना
 मरने का मरना पड़ा बुधान को केवल धन की जमाना ।

सन्निवृत्ता श्रिय भी उम्हे नहीं थीरत घर्ष का ज्ञान न था
 निज राग प्रेम का रागा का कुछ भा मन में सम्मान न था !
 वे पशु थे केवल निज पागल गलाग की विम्वार करने के
 बड़ मुक्त ग्यार्थ के पशुओं में मशुओं की भाँति शिखरने थे ।

प्रहार विजय

है कर्म पाप या पुण्य भरा इसकी बरबाद न करते व-
धमदाता के संकेतों पर मुनि-सम सज्ज न मरते वे !
मुरराज-द्वय, गुन सब बातें कदगुग भय से भर काँप गया-
उनकी जग की प्रमत्तता को मानो हम सन्नम खीन गया !
बहु जने सोचने “हाय ! स्वाध है कितना घोर घनाचारी
किम भीति स्वार्थ के बातों की जाती है कृति यति यति मारी !
जिनका जग के जघबीरवर में सबिलेक नज्जान बनाया है-
उनकी भी इन असवेनों ने पगुना का नाठ पड़ाया है !

घोर भूत के नैतिक भी क्या प्रभे हो मरने हैं ?
क्यों घोरों के बहने से वे घोरक के मिरने हैं ?
समस्त समय निज वृत्ति का काम तो वे गुरु ही पार्ये-
रानी कहलातेबाने तब कब काई छाँये ?

मुठ नहीं मुठ धर्म-नाम है हिमा नहीं प्रगति है
स्वाध-भ्यापित मुरसाय हो कम उन्नती अनुचिन है !
बहु भी सब जब घोर बिगी बिधि रखा रज न मन्दक
मुठ बिना निरिचन हो जब होता स्वाध-मन्दक !

सब जाग लेना उगमें नैतिक की सभी उचित्र है
जब बहु समय में बिना समय के गर्भनाय निरिचन है !
या जब हो बिनाम उग निज रानी का घर निरिचन
दि बहु बचावि न लेना वाँ पाप रिगीम अनुचिन !

धर्मका उतर मरने को या धन-मदह करने को
धन-मदह धन देना धन-मदह करने गुन मरने को !
मुठ नहीं बरपायता है जघमदाता काद है
रानी मेवक रानी का ही धर्मका वा शार है !

वास्तव में जिस शासन का है ध्येय राज्य-विस्तार;
 धर्मका भय द्वारा मनवाना सबसे निज अधिकार ।
 राज्य नहीं, वह है बन्धुओं का सुमण्डित समुदाय;
 उसके साथ योग देना है गृहित्तम धन्याय ।

फिर हम युद्धों के होने के लिए नीन है दायी ?
 क्या हों युद्ध मित्रों यदि दुष्टों को न विभूढ़ मिताही ?
 दण्ड बिधि से सन्नित केवल हिंसा ही नहीं करता
 है स्वतन्त्र निर्वोप जनों को परबल-बल बनाते ।

फलतः वे जन परबल होकर बितने हुए जाने हैं
 उन सबके भी पाप दृष्टी के मिर लारे जाते हैं ।

क्या बिगड़ा हिरण्यक-वश का बस सेनापतियों का ?
 क्या बिगड़ा गुप्त के दंड-चार-बस-शासियों का ?
 गा सुशान के निज वृद्ध को मरे दण्ड बिबादे
 दण्ड मरे से उपर मरे से भूषा धाविन सारे ।
 हा बिगड़े बंधों का र्छद ही धर्म हो क्या हागा
 पञ्चमाय बितने हृदयों का रत्न गा क्या होगा ।

हम भीति बिगना भरिना में मोने गान, उनसारे
 धनने हम भावों के दुष्टों का मन ही मध्य बचाने ।
 धीरों का करने शासन भरोसा दने धैर्य बँधाने
 स्वयं धीर बने सुगति उन जो नयन में गान ।

गा बनी से देगने मगर भूमि का हाव
 बिनु हत्य या बनी का धीर धनिक बिचल ।

ब्रह्माय विजय

पाग-बबे पुष्प-गा बा साम-साम रत्न-मांग
दयाय रंग लिए मृग भूमि से सया हुआ
जाती थी जहाँ सौ दृष्टि कहीं सौ बा मामो प्रति
पस्तय पायाच तृष पाप में पया हुआ ।
कैना हुआ भूमि पर, कृष्टि का विमल जल
भी बा मामो उठी एक रय म रना हुआ
बारों धार रत्न-द्रव्य पनि पशु बोधते के
मानो मन्त्र-शास्त्र का भगान हो जया हुआ ।

सागों की बतारें बने राजमन कोमों तक
मिल मिल भाषा का बशीका-ना सयाग की
कर-करवान की निगोह ती निमीके मरा
कोई धनु-पाणु नग धान भी बड़ाण की !
कोई होंग रही भी ठा दान पीगनी की कोई
कोई प्रतिपत्नी का स्वाग म दवाण की
कोई धनि शोक ही रही भी कोन में के कोई
परिष जटाण नीर धावे को बड़ाण की ।

तिनने ही करों के स्वयमनों के नीचे मूढ
के लिए रत्न धानि को ही य सम्राट छे-
तिनने ही छोड़ो के लगाण हाथ पुष्प मुक्क
बड़े से गों हो मृगा हों के धुरे हाथ गे ।
दिननों की धानि में भरे य धनु धान भी के
तिनने मर्माग हाथ के बका स्वयमन के
तिनने ही के बरहो-बरहो ही मनो
पशों में के बड़े धार धनु के निराग र ।

कटुण बिबाह के बंधे से कितनों के कर,
कोई निज प्रमिका का बिज सिपु घाए से
कई निज-निज हृष्ट-हृष्ट-मूर्ति घन्य आदि
बसनों के भीचे बड़े यत्न से दियाए से !
कोई निज हृष्टि धीर बाहु दोनों घूम्य-बिद्या
एकरक प्रार्थना के भाव से उठाए से
कोई बेत हीन वड़े पाज भी कराए से
कोई बाँध-भीच क्यों समाधि ही समाए से !

कितने ही उड़ बज धरज हो-हा संवहीन
रत्नप्रिय जगुघों से भीत भये फिरते
कितने से भावने में सममर्ष उठ-उठ,
बाँध-बाँध कदम पुकार कर फिरते !
बितना का घाघा तन का चुके बूझ आदि
ता भी से से प्राण बचाने के सर्व भरते
बाँध उठते से भूमि पर वड़े हृत्ताल तक
जब से बिकल कण्ठ से पुकार करते !

भीड़ बड़ हड़ मरक बिबाह आदि
गरी से तबों से निज-निज धीर भीचने
बाँधों में वकड़ घड़ घुन आहों की आर्ग
सीध-सीध भीचने के भीचते धी भीचते !
तबों में दिये हृष्टों क भी न बचने से प्राण
हिन जगु घ उठे भी भीचने से भीचने
वनों में गरोंच फिर नाच-नाच बाँध-बाँध
बड़े बड़े घन कर कुचक घमीटने !

देख यह बड़ा भुरपति भतिराय विकल हा उठे-
उठके बसाइ प्राण प्रम-प्युत हुए रो उठे !
बहने लगे कि 'क्यों जय प्रभा हो जाता है ?
क्यों दुनिया में एक-दूधरे को साठा है ?

भूमि धीरसाप्राप्त है सब तक भी बिचके हुए ?
कौन इन्हें जाते समय हैं अपने सँग ले गए ?

बहो ! धाज बिछनी माताएँ रोती होंगी
बिछनी मम बच्चों निज धाँगे खोती होंगी !
धंघ-हीन बनकर बितने दुग पाते होंगे
बितने कोमल कुमुम गूग मुरमाते होंगे !

बितने बंधों में नहीं कोई भी रह जायगा-
बिछनों का हग प्रलय में तब मम सब बहु जायगा !

पगु तक मंडह व्यर्थ नहीं करके रगडे हैं-
हमि पसी ममवर तब मिस कुपवर रहने हैं !
कोई अपने लिए धीर को नहीं गगना-
कला दूगरो का घर अपना नहीं बचाया !

दिगु तान में बरुड मुर ममुर, ममुर पगु वृन्द से
भी धबोय मम परमवर सजने है धान्य से !

प्रम-भुमुम की मार को सब पहुँची तमवार ?
दिर भी है सब छोड़ने मूर्त बुड-म्यार ?

दिर है रसाई हमारा होगा पगु माते जाते ?
मरने है मम गूग बचारे व्यर्थ मार गाने है !
मे देता रसाई दिनों की धंघोय दिग्ने है
उठने है बाने ? दिर बरबर गा-या दिग्ने है !

किन्तु आज है हमके दुग पर कीज क्या दिनसाता ?

हमकी चाहों पर है सो भाग्य भी कीज गिराता ?

सगिनों की हम करके खोज कराते हैं धनका उपचार

घाथितों को भी उनके कही दिया जाता है कुछ उधार !

पर इन्हें है हम जाने भूल इस तरह क्यों है ये पापाप

मही होता इनको कुछ कट नहीं हों इनके तन में प्राण !

करेमा दग धनीति को भरा धमा कब बह जग का कर्धार ?

दृष्टि में है सब जिसकी एक मुर प्रसुर, पशु-कृमि बिछ-मेंवार !

स्वर्ग में लगे खोलिग पदम प्राप्ति-बन्ध कर मानें धर्मिमान

धीरे हम नर्क यज्ञ के सिंग करें उत्पन्न बा-सा सामान !

बहें मुग य नि मृष्टि का रिजा एक हा है सपना भवबाध

प्रकृति की कृति में प्राणी सभी एक तिलु-मा की है सन्तान !

धन ज्ञानन बमबन हों या हि शून्यवागी या निरर कृन्द—

सभी है भानू भगिनि गम एक मृदु परिवार के मुह-बगु !

किन्तु व्यवहारों में सब भूत परस्पर भिन्नकर करें प्रहार

बहारें हँस-हँस निज सामर्थ्य बगु के विमल रक्त की पार !

धीरे हमको मानें भीरत्व धर्म वर्तव्य देश डारार

बहें दग बाम-भुजि की प्रभो ! उग्य धमका है विचार !

किन्तु धीरों को मैं क्या बत ? देखना है निरेश प्रस्ताव

धीरे अब ये ही मानें रण-राग कर विजय का गहार

दूनरों की निष्ठा का उन्हें सब बतों रहता है धर्मवार ?

निगा मजना धीरों को धाम्य किम तरह आ हो स्वर्ग मेंवार ?”

छठा सर्ग

पातङ्ग्य मुरारि के भुन मारण उरार,
धनुमध करते हूँ के मनसाय वा बार-
बडाकुनि बोले "प्रभो ! छोड़ न बीर धर्म
सदमा है हकबो पदा निररता के धर्म !
निररता के धर्म देव माचार हूँ ।
ध्यान बीजिए, विजने मुर-दूँ बार हूँ ।
विजने सर बर दूँ धर्मविज होने-शाने
विजने विज को गार हूँ बो, मने-माने ।"

बोले मुग्धनि "नब है य धर्मार विज धमुरों के
निररों घटनाओं पर य बार विज धमुरों के ।

किन्तु पाप प्रति पाप देवगण ! पुण्य नहीं हो जाता
कोई धर्म की जगह धर्म से पथाना नहीं बुझाता ।

धीर क्या कहा निज रखा ? यह ही तो है वह दास-
त्रिसही छाया में बसते हैं स्वार्थी धनवी जान !

इसी छाड़ में तो सब मुट्ठे हैं धमहीन
रखने जाते हैं धर्मित लोक, बनाकर दीन !

सेकर नहीं स्वसिद्धांतों के प्रचारार्थ का नाम
कहीं बनाने की धर्म्य लोकों की सद्गुण-धाम-
रत्न की पड़ोसियों के गृह में भी नहीं मुद्रांश
नहीं देनकर पर की वृत्ति से होनी नय में जाति ।
धीर नहीं पर गृह में निज हित की रक्षा करने को—
ही तो होते हैं छपार धन रण करने करने की ।
निज रक्षा को डाल बनाकर ही तो कुछ सचत्त्व
यदा बहाते हैं निपीह निर्दोश जनों का रक्त ।

किन्तु इन्हीं बातों से यदि बन जाय न्याय्य संज्ञा
तो फिर कुछ कहा जाएगा दीन जगत् में नाम ?
दास तक बनकर बलिष्ठ करने को धनी रक्षा
मुद्र करने मुद्रों को देने को निज धन-दीना ।

इसी नीति के धन से तो धनुरों में है यत् शान-
ति छूट भारत-पथाई व्यभिचार, छपी का जान-
मिथ्या-आशाएँ सभीके वर्तु धनता रक्षण
रक्षण समय-बदल करने हैं निर्मल धनीनि का योग्य !

यतः सत्य रसार्थ ही है हित-वृत्ति भी धर्म
है निज रसा धर्म तो भोजन तक व्यर्थ !

फिर क्या करते हैं गुरुगण निज प्राणों के जाने से ?
कबवा धन्यायों के सम्मुख निष्क्रिय डट जाने से ?
या जीने-मरने में उनके लिए भेद है भारी ?
जीवन-मरण, नहीं हैं दोनों एक खेल की क्यारी ?
नहीं ? तब कहो प्राण-वक्तता है इन लसवारों की ?
छिन्न म्याम्यता हाँसी है कब इन निरय बारों की ?

घोर मुरों का घलहयोग है प्राण बीन सह सक्ता ?
बिना हमारे बीन कहो सल भर भी है रह सक्ता ?
किम्वी वृत्ति गति यति का चरणा गुरुत नहीं रह सक्ता ?
बीन बसी है जो मुर-बन को देस नहीं झुट सक्ता ?
प्राण हमारी सहायता ही से तो सब समता है !
पता भी कब पवन देव के योग बिना हिसता है ?

पार्वत बीन "देव ! बरतु है जो जीवन की प्राप्य
उन्हें दीन या विनष्ट करके करना शत्रु पक्षय
भी ता व्यर्थ है फिर यह करना कब सम्भव जाना ?
फिर भी हिमा बिना बिज ठरत शत्रु पराभव जाना ?"

गुरुपति बीन "हाँ है जीवन-मापन हरना पार
पर हमम विनता है मुर-ममात्र के बन का पार !
एवं जो ममात्र हो विनता शनि-भ्रात का घावर
जाना ही जाना कान्ति-उमका विवेक का नागर !

फिर जीवन मापन गरवर भी पर गो का हो नाप्य
कि हम पक्ष का नापक गति कर देत गरव काप्य !

प्ररग यह नहीं है कि सके हैं हम निज रक्षा-धर्म-
 प्ररग है कि ये धर्म्य मल नया सभी हो चुके धर्म ।
 निःसन्देह स्वधर्म धीर स्वातंत्र्य न पाये देना,
 सभी शक्तियों का इनकी रक्षाई सहाय सेवा-
 है प्राणी का धर्म किन्तु इसका यह धर्म नहीं है
 कि उपयोग पाण्डित्य बल का समुचित सभी कही है ।

धर्म-धर्म भी पशुधर्म का उपयोग नहीं समुचित है
 धीर किसी भी धर्मि सरव रक्षा धर्म यथार्थवित है ।

या जो व्यक्ति धन्य से धरि की धूम्य नहीं भय त्यागे-
 नहीं सत्य पर दृढ़ रह सकता ससवारों के धाने ।
 या है नीति-हीन धरि जिसका धर्म जिसके धर्मित ॥
 है निर्बल धरणाधर रोषी तथा न्यायित सम्पति ।
 या जिस धर्म प्रयोग से हा प्रतिपदी का उपकार,
 उसके निम्न निहित है मुरधन्य । पशुधर्म का व्यवहार ।

नहीं वीरता है विदुषी । धर्म का धर्म करने में
 है वीरता सत्य पर निभय न हृण धरने में ।
 सच्चा विदुषी है न वह धर्म हाकर या पाता है-
 प्रत्युत वह जो बिना धुके निज धर्म पर निट जाता है ।
 स्वधर्म तो प्रतिपदी पर वही बनेगा धर-
 जिस धर्म स भय है या है धर्म न पाह धरार ।

धर्म हिमा धर्म धर्म का है धर्म-धर्म गम्भीर-
 निर्धनता न धर्म ही धर्मनी धर्म धर्म की धर्म ।
 ? धर्मिधर्म धर्म धर्म न धर्म धर्म धर्म
 धर्म न धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म ।

जग-मुहुष्म है सब बुद्धिबियों पर क्यों घात प्रहार ?
उन्हें मारने से तो मरना ही है घात उधार !

कब देवपिपुरी बिज घटि-वध किए रग सभी मान-
सब क्यों रग सबसे न मुर उमी रग से अपनी घात ?
क्रोध जहाँ है वहाँ रहेगा निरवध ही घमात-
बिससे किया त्याग ॥ सज्जा नहीं कभी बलिराज !

बुद्धिबुध्न प्राणी है गुरुमन ! बिजम हम भूतल पर;
चारुवध ही उनके जीवन का है हगपर निर्भर !
करत है पशुमित्र वामाँ का सम्पादन पशुवध से
समुर निज करत है आ बुध्न वध बुध्नता, धम से-
बही बुद्धि से घोर भाव-वध से नय बमार्थ करना
बिहति प्रकार में भी बिबेक-वधिन वध पर ही बसना
घातवधन में यही बुद्धि है राजनीति बहूतानी-
यही नाम है जगद में आध्यात्मिकवध का पाती !

रि हो बिहति-रिक्त पशु-वध न सेना वार्ध बिहिन हो
तो क्यों रचना है गर-गुर घमुरों का बुद्धि मतिन है ?

घोर किया है क्या हमने घमुरों की ही संरक्षित की ?
प्रदान न क्या के न ममज गहन य हम दुमति का ?
हम भी तो वध उनका घटि निररर बंटे गहन है
कब उनके प्रति कणु भाव गुर दूरा में करने है ?
कब उनका प्रतिन है गुरुमन करने है दूर दम
रि व मर्मा दूरवा का जग व व निर नीति-गुरुन ?

ये कुछ न कर स्वयम् भूने हैं वे बन मुक्त घासन में
 इस रण में भी न थी हेष-ज्वाला किस-किसके मन में ।
 इस बिंब क्या शायित्त्व नहीं है हमपर भी इस रण का ?
 क्या है मात्र अमुर बस ही उत्साहक इस कारण का ?"
 कहते-कहते कुछ विस्मित हो फिर मुरपति उठ खोले—
 'बन्धु प्रभो ! मम वधु प्रापने ठीक समय पर खोले !

ठीक मात्र है मुरगण घपना रौद्र वध कँक्रे
 सचमुच अब कचराचर में वह वधु प्राद देखेंगे ।
 जिसे देखना ॥ है उनका प्रकृत-वर्ण एवान्त-
 'पाद्वं प्रापि उत्तं होवा अब उनका सिद्धान्त !
 उल्लेखना न अब मुरगण को लोचित बना सवेनी-
 कोई शक्ति न अब मुरवत्त न वह रण उठा सकेगी !

स्वम-मुरी को छोड़ रहेंगे अब मुर कचराचर में
 स्वर्ग ही नहीं अब मुर-नामन पहुँचेगा घर-घर में ।

घण्ट-घण्ट होकर भी वे निज धर्म नहीं छोड़ेंगे
 किन्तु साथ ही मृग को भी कर डग नहीं छोड़ेंगे ।
 अब मुर-नामन का आचार न हाथा पशुपत उल्लि-
 अब मुर-सक्ति रहेगी बनकर नमना सेवा शक्ति ।
 अब मंतीव बनेंगे नर न स्वयम् ही बनकर विद्व-
 होगा उनका उद्देश बनाना नरका नमन प्रमिश्र !

अब तक मात्र बिन्दु न ममभे प्रेम-वर्ष का नार
 अब तक मुर यह मगमग जीवन मानने अब भार !
 होवा उनका प्रकृत धन बन नवके प्रति गवहति-
 नास्तिव आत्मिक मरणा मरण-मया की प्रेमिल मृति ।

यम धम है साम्य धामि है यही निरप गाएँगे
सब जग को है लामा-धर्म की महिमा विप्रभाएँगे !

इस निश्चय से सुरपति मन में पाई अद्भुत धामि-
उनके मुग पर लम्क जठी इस पवित्र धम की कांति !
महक जठा हो कण गिला पर धपित मामा बम्ह-
मबका तप परिताप धमि में स्वर्ग हो गया कुम्ह-
पदचाताप धमि में बिन्ता मस्म हो गई लारी-
भूम गई धौधों में माबी जावन की मुग-बयाही !

इसी समय सुर छिदिर ने ने गुद का आदेख
घाया एक पदाति मन घाम बड़े सुरेत !

हुस धाए में सुरराज बनान् मुग का वस्तुम्न बनाए,
निगम हास्य की कर्षा करते गुद-विताम में घाए !
गुद में स्वापठ कर सावर, घामन पर उहें बिछवा-
घौर उहास कहा "यह है कसा बँधन लगाया ?
कसा घारे कत ध्यों को गुद ही पूरे कर सोये ?
महामर्षी को इस गुमज में कुछ भी भाग न जाने ?

इस उमाता में दह जबर तन सेवर बही गए न ?
इस अवसय में मयर भूमि में क्या मग रखा रहे दे ?"
मर्याति में निज मनोमग का मारा हास्य ननावर-
हवाहा के मने घोर देन कुल म बज्जर-
कहा मविमय किनी मरग म नही मयम के घाया-
कसा इस घमांग सब को ? मरगु-श में धायाया ?"

सुर-मुख यह चुन, हर्षित होकर सने सोचने मन में—
 स्मात् पुनः ध्वज क्षतुपति आन बाते हैं सुर-वन में ।
 तब ही तो प्राचीन संस्कृति फिर प्रस्तुति हुई है
 तब ही तो सुरपति-मन में यह करुणा उदित हुई है ।
 ठीक प्रतीक्षा की जिसकी मुझको यह वही समय है
 जब इस संस्कृति-वृद्धता पर ही निर्भर शांति-विजय है ।

फिर प्रसन्न हो बोले 'सुरपति ! सब है यह अनुमान
 सुर-जीवन में या न कभी हिमा को इतना मान ।
 पूर्व कास का सुर-जीवन वा वास्तव य आदर्श
 कीन या सदा है जब में उससे बढ़कर उत्पन्न ?
 वह जीवन अद्भुत था उसमें विद्वति कहीं खूबी थी ?
 जीवन क्या था अति-मुरमरी मृत्यु वर बहनी थी !

कभी बिकार न उनके मन हर पाते थे अचिरात्
 सुर-सिन्धुवर्ण तक प्रीति सिद्ध सम करते थे व्यथान ।
 भुष्ट-भुष्ट सबके तब सुरमण तब भडा भावन थे !
 सब लोकों में शान्ति-मोक्ष फैलाने के साधन थे ।
 सुरमण के जीवन का था तब जब में दगवा मान
 कि गद समाजों में पाया उनसे उच्च ध्यान ।

सब ने थे स्थापित किए निर-निश केर-नमात्र
 करने को धनने यहाँ स्थापित स्वर्ग-स्वयं ।
 वहीं रहते थे भूगुर दईं वहीं रानी धारी अतिधन-
 वती मुनि वती बुद्ध काचार्य वती वरग य विद्व-गमात्र ।
 सुरों का रण मधुग घातों बना निर सदा विर-नम्याग-
 मयी य करने थे तब-स्थाप-विधि वर निर जीवन निर्वाण ।

काय का इनका दुर्बल दलित होन जन का करना उरकार
दियाना अज्ञों को समार्थ पतित-जन का करना उरकार !

रवाग कर मारे मुग-ध्यापार स्वार्थ हिमा प्रपञ्च अपकार
विरह में करना सख प्रचार, ग्याप का पैसागा अपकार !
बलु बिद्या बंधन कुम छष्ट घादि धेरो मे रहना मुक्त;
समीपर स्वना सम अनुराग समीको देना वति उपयुक्त !
समीको रहना बर्माकु न बड़ने देना वहीं अगान्ति-
भते ही उनको इनक लिए, करानी होवें वासन-अगति !

मुरपति बाग विम तरह फिर यह क्या हम् ?
क्यों जग के धार्य गुरु जेते स्वार्थ के पत्र ?

बुद बोले, "हे यह भी मुरपति ! एक मुदीर्ष बहानी
वह दुम भी वा धात्र की तरह ही मुझों वा मानी !
उस युग में भी धात्र की तरह सर्वमान्य वा दम्भ-
जन, प्रपञ्च पागल स्वार्थ से राजनीति के रज्ज्व ।

मुग से ब गब पब, दयादिह दलों में दुम गाने
विष्णु स्वार्थ के समय गभी ब इनकी याद बुझाने !

विमाको न विरग विगीता भी वा व्यपहारों में
बीरन से दश-मुन व्यय हाग वा रज्जु हविषारों में !
अम्भ में गभी देवों वा भी उनम अति उबनाया
न से विमद्व उये नष्ट कर देना ही टहनाया !

निरपव हृषा गभी देवों को धार्मिक विरराका
एक उद- गद गष्ट-नमुनी के प्रतिनिधि बुराका ।

मुरपुर में ही फुड़ा घन्ट में समारोह यह भारी-
 तपोभूमि क्या इस दिन भी यह चिर-सुगनों की क्याती !
 भिन्न-भिन्न भाषा आकृति बात विभिन्न देशों के;
 भिन्न-भिन्न व्यवहारों वाले भिन्न भिन्न देशों के
 राज्य प्रजा सब के प्रतिनिधि विद्वान् भीर व्यवसायी
 सबने मिल भी विरह-शान्ति की नूतन नीति बनाई !

मुरपति ने सोलुङ्ग वृद्ध "बहु क्या वा कर्म विधान ?
 कहा मुक ने 'गुनो सात ! उसका सतिष्ठ ब्रह्म !

निश्चय हुआ प्रथम तो हिमा रण को घष ठहराना
 पार मानना वैज्ञानिक रण समिधा-भोत बनाना !
 धीर स्वार्थ बागुज्य-यत्र-कौशल का नाम मिटाना
 प्रहृष्ट-संस्तुत जीवन को ही धर्म-वेग रहाना !

सत्य बोलना सत्य पावरण करना धीर कराना
 जाति राष्ट्र समुदाय आदि के अनुचित भेद मिटाना !
 समा भावक इम्यादिक के अनीतिमय आघोषन—
 को प्रत्यक्ष परास किसी विधि देना कभी न पाने !

दिनु नहीं साधारण अगहों का मिट सबका नाम
 नाम कोच मर करते ही हैं जन के अपना नाम !
 नहीं जयन में सब योगी मुनि अवश मुर मन गजने-
 करिन् ही नहीं हण्ड व्यक्तियों में भी है टन गजने !

घात हुआ निरिधन उनका भी निरिधन पत्र ठहराना
 यथापाध्य उनको रण जिना घष में मुक्त बनाना !

नियम बना यदि सड़ना तो भी छल में काम न लेना
 नही पात्र को भी समर-भयम में भी धोखा देना !
 न ही भयानक विपत्ति धर्मों-धर्मों का धरनाना
 और न बल-वीर्य में निर्बल पर सम्मानन करना !

सुरमाग की मरने हुए मर-जग का नामक टहलपा
 और फाँसीको मर राखों का ग्वायाभीम बनाया !
 कुछ काम करना हुए राज-जोड़ आशान्त
 धर्म के माते गए धर्म सम्बन्ध विधान्त !
 गुरुणा का हठ धर्म ही क्या रणना मुष्टिग मैना
 मुष्टिगियों के बिन्दु हल की गहापना देना !
 कुछ न होने देना जग में धामि शराह बहाना
 मर मुष्टों में हल नियमों की विमल दरवा पङ्गना !
 धर्मनिरु धर्मदि भी धर्म नर करने जाने से
 धर्म उन्मूलन जाती न निर मुरतुर पाते से ।

गुरुणा बोले 'न ही धी हुए' ! हठ की राग-कावणा ?
 हुए धामि नर राखों की मर-भीम धरणा !
 कहा गुरु ने 'गुरु धरणा तो ही मरना एक
 हल नियमों के धामिनाई का धामि राख आदर !

आ विदमाननननननन का बट धर्मिग हाना का
 नही की मुष्टानुसार निर धर्मिग धरणा गाता था !

नल धरणा मोर्छों की धामि पर ही निर्धर धी
 धामि-नगा नर राखों की धरणा की धनुषर धी !
 धरणा-नगा न हुआ धमिधर्मि धर्मि धामि करने से
 धरणा-नगा धरणा का धमिधर्मि की धनुषरने से ।

सुरपुरमें ही कुहा अस्त में समारोह यह भारी
 उपोमृति क्या उस दिन थी यह तिर-सुमनों की बपारी ।
 भिन्न-भिन्न भाषा भावति बात विभिन्न देशों के
 भिन्न-भिन्न व्यवहारों वाले भिन्न भिन्न देशों के
 राज्य प्रजा सब के प्रतिनिधि विद्वान बीर व्यवसायी
 सबने मिल भी विश्व-शान्ति की नूतन नीति बनाई ।

सुरपति ने सोलुफ वृद्धा "बहु क्या वा कर्म विधान ?"
 कहा बुरु ने मुना रात ! उनका संक्षिप्त वरदान !

निश्चय हुआ प्रथम तो हिमा रण को घप टहराना
 पाप मानना वैज्ञानिक रण समिधा-नोत बनाना ।
 धीर स्वार्थ बाणिज्य-व्यव-नौगत का नाम विद्वाना
 प्रवृत्त-नरदृग जीवन को ही धर्म-वेग पहनाना ।

सत्य बोलना सत्य वाचरण करना धीर करना
 जाति, राष्ट्र, समुदाय आदि के समुचित भेद विद्वाना ।
 देना मादक द्रव्यादि के अनिवार्य उपयोग—
 को प्रत्यक्ष वरोध बिना बिना देना कभी न पापन ।

जिन्हु नहीं साधारण मयहों का मित्र मवता नाम
 नाम जोष नर करते ही है जन में घाता नाम ।
 नहीं जयन न मर बोधी मुनि घपवा गुर बन मरन
 नरविन्ही ही नहीं इन्द्र व्यक्तियों में भी है टन मरने ।

घा-हृषा निरिधन उनका भा निरिधन बप टहराना
 नवागाध्य उनको रण हिमा अय न मुक्त बनाना ।

प्रज्ञान विमल

नियम बना यन्नि सङ्गना सा भी एत से काम न लेना
 नहीं रात्र को भी समर-स्वप्न में भी योग्य देना ।
 न ही मयामक विपाक रात्रों-भस्त्रों का भरणाना
 घोर न बन्-कौण्ड में निर्भय पर रात्रास्त्र बनाना ।

गुरुरात्र को मचने दग मच-जय का दासक टहुराया
 घोर उहीछो गव रात्रों का म्वापापीन बनाया ।
 मृदु बाल धरना गुरु रोष-लोक आब्रान्त
 अरुध्य वे जाने का, घात तटस्थ विमान्त ।
 गुरुरात्र का तब धर्म हो क्या रगना मुगटिष्ठ सेना
 मुडवादिनों के विरुद्ध दग को म्वापना देना ।
 मुड न जाने देना जग में शास्त्रि त्नाह बहाना
 सब मुडनों में न नियमों की विमल द्वावा चरुगना ।
 यगनिष्ठ अन्धारि भी यही तब रहने जाने से
 जिने पन्थन शरी के लेने गुरुरात्र धाते थे ।

गुरुरात्र जाने "कर्म" की भुज । तब की रात्र अक्षरवा ?
 बुज बाराद गव रात्रों की म्वापापीन अक्षरवा ।
 बहा गुरु ने "भुज" अक्षरवा तो ५१ गवकी एक
 दग नियमों के वागनाथ या बाध्य रात्र प्रदेक ।

जो नियमात्पन्न बनना या वह अक्षरवा द्वावा का
 दोवा की गुणागुणात्र निज यति रात्र गोश या ।

लेन अक्षरवा गोशों की "वाग" पर ही निर्भर थी
 वागद-मना मव रात्रों की जग पर की धनुषर थी ।
 वाग-जनों में बुज म्वापात्रि विज वागद करने थे
 मंचरद मव द्वावा की वागति की धनुषरने थे ।

निर्वाचन द्वारा नियत हुंगा वहीं मरेश ,
 कहीं गुणों की परीक्षा का या नियम विरोध !
 जो होता जल्दीसे, वह पाता गुण-पद-मान
 कहीं बंध का प्रमुख ही सेवा प्रमुख स्थान !
 कहीं समुद्र में एक ही जल करता था रात्र
 कहीं तीसरे-चौथों बर्फ बदलता साज ।

इनमें भी वे कई जेड कुछ रखते थे बुद्ध-सम्पत्ति
 कुछ रखते थे सभी धाम का अजित मन एकत्रित !
 फिर उससे हाथी भी सबके लिए समान व्यवस्था
 ऐसी ही विभिन्नता-मय थी तत्कालीन व्यवस्था ।

ग्राम-कोष में वहीं बर्फ की बचत जमा होती थी
 वही मृतक की उत्तराधिकारी बनता होनी भी ।

हम धन में ही ग्रामों का शासन समझा था
 दुष्टानों में हम ही में मकरा भोजन बिना था !
 हम ही के द्वारा भी थी जाती-मन मन्थन विधि
 हम ही के द्वारा रखा जाता था ग्राम सुरक्षित !”

बुद्धा सुरक्षित में ‘कैसे थे गुरु ! ‘ग्राम कौन रंज ?’
 बुद्ध बोले “ई ठीक नाम ! जैसा अपना गुरु-रंज !”

गार यह कि हो लगभग धूल से सभी व्यस्तपायी के
 अपम बतान प्रहृष्ट कार्य-जीवन हम गुरुगणों के !
 पीर खल्लू का रघा, विद्या धर्मगुण सागर से
 मान्य भाग मेरे के प्राप्तिव सागर-मंथन में ।

हर बुद्ध को शिक्षित कर के पूरा रखने बनाता
 तथा व्यक्ति पर सागर काय्य मंथन से ही बन्धना ।

कुसुमनों में सुखन या कुसुमनि कुल का पापक था
यह समुद्र मर्माधिक स्वर्नजला का धारापक था !
किमी जाति का भी धामन स्वीकार न ये करते थे
ही स्वर्नजला की रता में सब मिलकर मरते थे !

बने थे होते थे मधमे धीपिक ग्याय-प्रिय त्यागी
शर्यानिष्ठ मेधाप्रिय एवं धाम्नि-यर्न धनुरामी !

हुनि करमे थे पुनः करन महिलार्थे कुन गनी थी
कृद-मगहमी गवयुक्तों का मण्डिता देनी थी !
कर-स्वका था मयका कुल न विमीयो न देने थे
ही बने निन ही मोरों की विनि नव्य लेने थे !

ओ कुनः स्वर्गिन होना उव ही में पने थे कुट
एक ध्याति ग्री उमर्मे विनता था न सामची कुल !

प्रम रंग में पौ रमी उनरी गव कुन गीति
प्रम पमं था ग्रीति हो थी उनरी कृ-मीनि !

कुसुमनि कुल-मग धानकर काना था गव वाप
कुना क थे विन ही मगचार, धीरार्थ !

दिन पण्ड मे जा कुल बरता थे दीनों को दे देने
विनु गनं का बलो गौरी भी न विमीमे मने !
हिमा हग पण्ड तनय थे उनके विन बराबर
विमी रात्र प्रार्थी का दुग भी था उमर्मे कुल-बरा !

दिन भी स्वर्नजला गता म थे थे पवन हिमाचल
यह हू न एक बार मर गया बर्माण बरा निर्बल !
गुरार्थ ! है यह गव गण्ड मे मरग धरुन, पुगता
धी है पवन हूया यह पण्ड दिग्मे दमरो बना !

सुरपति बोले बाहा ! बिबल बहू केसा मुग्धर हाहा !
 छबमुब ह्री बह परम पिता का प्रीतिव मन्दिर होवा !
 बुद बोले "तब मुग्धर से भी मार्थ नहीं बहू कर बा
 सुर मण से भी मुब मनुष्यों का बरिब बहूकर बा ।

सत्य प्रेम स्वार्थभ्य, साम्य राहुयोब पवित्र परमता
 बे सब के स्वाभाविक बुल निरुद्धमता और मृदुमता ।

देग-देग उल पवित्र बीबल को सुर लमचाते बे
 बार-बार मर-तन करने को मृत्यु-मोह बाते बे ।
 किन्तु धर्म में उम युव के भी विरमे बा दिन छाया
 बरा प्रस्त उम मनमुग में बसा मे पर बहाया ।

जमरा मृतस पर समुरों का पैम बना अधिहार
 निमल जस पर बाई मे केबाया निब व्याहार ।
 पैम बना अज्ञान स्वार्थ में बूब दल गब देग
 कमे विनाम-नाम मे जमरा गारे प्रजा-नरेग ।
 समनासी सुर-मनुष्यों तरु मे बनेक समुर प्रपाएँ
 लगे लीनने बिबले ही बनरी ह्री मुद बसाएँ ।
 बुद्धने निब रघार्थ समुरगल की जय की समनाया
 बुद्ध मंमति मे भीगे बुद्धरी समुरों मे निगनाया ।

अन बाभलाएँ बाहवा की बनिरन लगी बचाने
 स्वार्थी बहि भी लय दुग्गा ही की बानि बहाने ।
 स्वार्थ बग दया मगा भीर मे रवान प्रम बा बादा
 अनिरासी की प्रपा स्वार्थ-मुदों मे रंग समादा ।
 और बाब ता बिबले ही सुर-मनुष लमच प्रम बून
 निने ? धानुरी प्रपाओं को स्वपथ बा धून ।

हम ही भूमभूमैया मैं है भूम रण जग सारा
प्यन्य छात्र प्रम-भोरा का मित्रता नहीं किया।

मुरगण ने स्वभावतः हममें भी बाधा पहुँचाई
पुत्र रात्रियों के बिगड़ थी पूरी दानि भगार् !
हमीनिष्ठ मुर घमुर स्वभाविक तनु गिने जान हैं
होना निर्वन्निष्ठ छात्रों को अब मैं प्याने हैं !

तब ही ॥ मुरपण न गमिक्ता की घपनाया है
घोर तर्भा मे मुर जीवन में सामक-भन घापा है ।”

मुग्धनि बाग “विष्णु धर ता है यह सब व्यर्थ
मेघ रहिन मग में भना बिछन का क्या धर्म ?

बिगड़ चुकी है जब मारी प्राचीन व्यवस्था
न वह बिन्द की न है मुरा की रही प्ररग्या !
तब यह बरि के कम बंधे मृग-विशु गमान है
पुष्प गरी पानों के लवह का बिधान है !

धन भना है गग लज फिर निवृत्त रूप मर्यादना
द्वि मरये मुर-भर्ष का ही तन-भन मे पानता !

बावे मुर “हे टीर मग दू नाम मुग्धना
इम घमार्ति-मृग का भी है घब डर बिमारा !
मही नहीं घब तो इम दुगम धम्यार में
मर-नवर गमिर्ता निगमा निनु गार म

घापा का रेगा कही हँटू ठाक घानी नही
घामि कही राग के निर्वन्निष्ठ नर पानी नही !

सुरपति बोले “यहा ! बिबल यह कैसा सुन्दर होना !

सबमुख ही वह परम-पिता का भीतिक मन्दिर होना !

मुर बोले “तब मुरपुर से भी मार्ग नहीं बड़ कर ना

मुर मण से भी मुक्त मनुष्यों का परिध बड़कर ना !

सत्य प्रेम स्वातन्त्र्य साम्य सहयोग पवित्र धरमता

ये सब के स्वाभाविक गुण निरदमता धीर मृदुलता !

हेत-हेत छत पवित्र जीवन को मुर समचाते थे

बार-बार गर-तन धरने को मुरपु-मोक जाते थे !

किन्तु धर्म में उन मुख के भी निरने का दिन आया-

जरा प्रसन्न उन सबमुख में जाता ने पर बड़ाया !

क्रमता भूतल पर समुहों का फल जसा अधिकार

निमित्त जल पर बार्ह में फैलाया निज व्यापार !

फैल जरा अज्ञान स्वाध में डूब गए सब हेत

फँसे बिनास-पाप में क्रमता माने प्रजा-नीध !

अपनासी मुर-मनुजों तक ने अनेक समुर प्रचार्य

सगे सीनने बितने ही उनही ही मुक्त-बनार्य !

बुझने निज रत्नार्थ समुरमण की नय ना अजनाया

बुझ अन्तर्ध है सीने बुझने समुरों ने गिगताया !

अत्र बागनार्य आत्मा का निर्दिष्ट सभी बचाने

स्वाधी बहि भी मन बुझता ही की नीति ब्रह्माने !

स्वाध बन नया गया मोह में स्वाध प्रम का पाया

अनिष्टार्थों की जगह स्वार्थ-मुक्तों ने रग ब्रह्मा !

धीर धाम तो बितन ही मुर-मनुज समक भय भूत

गिनने हैं धामुरी प्रपाधों को स्वधर्म का भूम !

इस ही मूममूलका में है मूल रहा जग सारा
 पतत धात्र प्रम-जीवा को विनता नहीं किनारा !

मुरमण ने स्वभावत इम भी बाधा पहुँचाई
 मूढ मादिया के बिगड़ भी पूरी राक्षि लगाई !
 इसीलिए मुर धगुर स्वभाविक ठगू दिने जान हूँ
 दोनों निब-निब घाटनों को जग म चँसाते हैं !
 तब ही म मुरगण ने तँनिगठा को घपनाया है
 घोर तभी है मुर-बीजन में घामक-वन धाया है !

मुरगति जाने "बिन्दु धर तो है यह सब व्यर्थ
 येप रहिन मय में मया दियुत वा क्या धर्म ?

दियुत लुकी है जब मागी प्राचीन व्यस्य्या
 न वह बिरब भी न है मुरा की रही घपस्या !
 तब यह कति के काग बंध मूढ विगु गवान है
 पुष्प नहीं पानी के संग्रह वा विमान है !
 धन-मया है इस तन फिर निब का मग्नानता
 फिर मन्वे मुर धर्म को ही तन-मन म पामता !

कोने मुर "है ठीक धन धर तात्र मुरगारा
 इस घमानि-मुम वा भी है यह दूर किनारा !
 बड़ी नहीं घब ना इस दुषम धपवार में
 मरर-जकर-नगिनी निराग विपु-जवार में
 घागा की रेगा बरी हट्ट तनक घाडी नहीं
 घानि बरी धगु व गिा निबने तब पानी नहीं !

उमड़े हुए हैं हय प्रवाह में बहे जा रहे
 रही-पड़ी सस्कृतियों को भी है भुना रहे।
 पात्र केव निज दिव्य सतिष्ठा भुन रहे हैं
 पात्र राजसिक कर्मों य ही भुन रहे हैं।
 श्री-सत्ता का माह भी है ही उनमें बड़ रहा
 घोर सक्ति-प्रधिमान भी है ही कथन बड़ रहा।

नित्य तुम्ह भी एक नाम की बात बतानी
 मुर-बगिनि है पात्र धनुरपति की पटरानी।
 हिरण्यकश्यप छोड़ गया था उसे पटवित
 यद्यपि वह भी गर्मबती गङ्गा पवर-नीहित।
 पाया मेला मे उसे पात्र एक दागी-महित
 टटका रक्ती गङ्गा है वह धान-भुन मुरधिन।

रानी को ? का मुरपति बोले कुछ धातव्य बिगाकर
 "धन्य नगी बिना मुद। रानी को बगिनी बनाकर।
 यदि भी हम धनुना भी तो भी धरि-बाढाधों मे
 बना लेता था मत्ता हम इन कुर्मिग धन्याधों से।
 महिमा छिर बह बोले भी हो है मुरपण की बंध
 उनको बगिनि करके रगता ही है धनुधिन-नित्य।

मुर बोले "धनुधिन तो हममें कुछ भी नहीं हुआ है
 मुर-मेला न मुद नियम का ही धनुगरण किया है।
 धनु मत्ता को पर लेने को थे अनिवार्य बाध्य
 मुक्ति-मान देना था उनको नहीं किसी बिधि बाध्य।
 हाँ बह महिमा होने से भी बिना धारणीय
 घोर है किया गया इन दिना में सब कुछ करणीय।

धनु सभी सेनापति मारत भुनि को कुनबाणि
घोर बह उग सेकर धरिदस में पहुँचा घाण्डे !
बिगु देव ! है उसे घाण्डे पर्वत की धमिभाषा
यह बिगुणी है घोर मुझ है उममे धक्क व घाघा

रह रह मेरा मन बढ़ता है यह कुछ रंग साणी
हमकी धमिभा ही समुहों को मलय दिग्गमाणी ।

धत घाघ पहने लो जाकर, कुछ भोजन वा सीने
छिड़ कुछ देर छपन कर हग बजर लन को मुग सीने !
छाया ममम छाया होकर छिड़ उसको कुनबा सेना
उमके हृदय भार मुन को समुचित हो गिरा देना !

जाइए ! न सब घोर बिगी भगड़े में छिड़ जैन जाना
बग्न पड़ेगा मुझ घाघ मर्याद" धम रवाना ।

मुह घाघा स्वीकार कर जैन हुए सुरेस
गा गिरि शिव धक्क न गयीं वा दिने निने ।

दीर्घ घाघा वा घाघा देग धम कुछ भीष पाने हुए
धनुमामी के रथ के धरत वर जने व बने हुए !
हमगु न गुद की होकर सिंगध हो वन व रवि भी कुछ गीत
रसिमपों भी निभ भर की दोड़ घुन गे हा बड़ी भी वपात ।
मुमु" हाने हाने निभ मेन गोमने वा बग्न व दान
बनारों के दान प्रमुदिन नने देगने शक्ति-दान के स्वप्न ।

हरी धम चम्पारति मे पजेव, बिग नुराति के बग्न धर्म
बग्न गरा रवि बरनों व गदा बहाने निभ नी-पोंवर ।
धर्म धमो वा गरी। धम रिर दिग्गदी-बहुबानी हुई
वदने धमर गतिद्विध-मुक्ति हुए न नदन बगानी हुई ।

ठिराणी महिषि स्वपद-मण्ड-मनी भूमितल पर यों हो स्थिर रही
बाध-गाह्वर धो ज्यों निज मनोमाध भूतल पर हो तिल रही ।

समस्त धगमंजम मानो महिषि-हृदय-तन्त्री को कटते स्पष्ट
पाये हो आश्चर्य देखे हुए, जाने कहने गुरुराज सहर्ष ।
‘‘तुम्हारे उचित मान सरदार में रही हो यदि कोई भ्रम
पुनि । तो करना हमको धमा धक्का है न यहाँ अनुग्रह ।
मुझे यदि होवा पहले ज्ञान न तुम साईं हो जाती यहाँ
जहाँ होती समुद्रों की सम्य गुरुराज पहुँचा भी जाती यहाँ ।’’

देन यह विचोचन मन्त्राज घोर गुरुराज की वाक्म युधि
निज-महय यह अडास्तव हृष्टि जो जगन को ऐनी की स्फूर्ति
हृदय धामी का सहगा सरल निमु-महय भावों से भर गया
एक ही भौंके से यह वृक्ष मात्र-संज्ञा भय का गिर गया ।
रहा समुचित न फिर संकोच भार पलकों पर से भी उठा
गुन बागी क कथन निज भीष्मा के वसुध से पुटा ।

रोट कर गतिनय कहने लगी गुरुराज की सज्जनता गुरुराज !
धामिनी पवित्रता प्रीति प्रीति है जन में विद्यने धाम ?
नही है मैं करी की तरह एक क्षण को भी करनी यदि
मान होता है मुझको तो कि विद्वत्त मैं है मैं यह रही !
स्वयं है मैं तो मात्र अनुग्रह की कृपियों पर गुरुराज
समस्त न ही कृप्य धाता नहीं धमा भी माँवुं निज विधि धाम ।

कहा मन्त्री मैं यदि यह देख ! मुझे है निजनी दमनी गति
गतिनी है निजनी यह मुझे स्वयं ही पन जीवन की गति ।
जानता है यह ही जगदीश मुझे दम रण का है जो मेर
गताता उगे हरे जो नहीं जानते निज-वरता में मेर ।’’

प्रसार विजय

जानि से सहसा घटि-मुग-कान्ति हम तरह भुंयसी-मी पड़ बसी
मूढ़ समने से ज्यों प्रम हीन हो बसी हा नव बग्या-बसी !

बहुग करने का भागन मान्य घतिधि को देने शुभ घारेण
ममुर भीला-स्वर से वीरुग-वृष्टि-मम बहने मये मुनेण !
'रचा है विधि में महिमा-हृदय बया-गुणिता-मनेह को गानि
स्वभाविक घीर योग्य है देवि ! मुग्धारे निण मुद्ध मे ज्ञानि ।
बाह्या है मैं किना घहो ! ग्याय होना ईस्वर न विना
दिया होता पुकों का वही हृदय जो शुभको उमन दिया ।

ममुर-महिषी बोसी मुरनाय । मुभ तो है यह दृढ़ विस्वास
कि रणना प्राणिमात्र पर प्रम मान है धर्म घीर परिहाण !
घयर बय होना मेरा प्रयो । मुद्ध करना मैं गिनती पाव
हय ईर्ष्या-सातव को मया मानती बरपावर का भाग ।
घहा ! बदि होता यह, तो घाय बिअर हाता बंसा मुग-नेन्द्र
दित तरह मिलकर रहन मभी ममुरगति मुपति मुनेन्द्र मग्ग !

विन्दु न जान बयो विधि मे है न । मुद्धा की रचना ?
क्या निग दिया भाग्य न जय क है यों मरना पकता ?
क्या है काम कोप सायब का हाता जात बिपाया ?
क्यों है जय न प्रेम इत दाना को प्रमुग बनाया ?

बाये मुरगति गण्य है गुना । यह धनुमान
बागवत न है प्रम ही गुणमात्र नति ज्ञान !
प्रम प्राय है दे दे घोरन के दण्डार
मूढ़ मुग्य है प्रम-दण्ड मारे पर्याहार ।

ठिराती महिषि स्वप्न-जग-धनी भूमितल पर धों हो स्थिर रही ।
 बाक-माहम को ज्यों निज मनोभाव भूषण पर हो मित रही ।
 समझ समर्थतस मानो महिषि-हृदय-तन्त्री को करते स्पष्ट
 गते हो घावर देने हुए, सवे कहने गुरदास सहस्र ।
 'गुम्हारे उचित मान सरकार में रही हो यदि कोई भूम
 पुनि ! तो करना हमको क्षमा अबस्था है न यहाँ धनुष ।
 मुझे यदि होता पदमे जान न तुम लाई ही जाती यहाँ
 जहाँ होती धमुरा की संस्य गुरत पहुँचा ही जाती यहाँ ।"

देख यह विनोदित मन्त्राव और गुरदास की शक्ति शक्ति
 गिर-महम वह भयानक दृष्टि जो जपत को देनी थी स्फूर्ति
 हृदय रासी का महमा मरम शिशु-महम भावों से भर गया
 एक ही ओंके में यह कृप ताज-दावा भय का विर गया ।
 रहा मनुषित न छिर सकोष भार पसकों पर ही भी उठा
 गुर बाणी क बचन विन भीष्मा के बंधुन ने दुरा ।

जोड कर गरिप करने मही गुरों की गजबता गुर दास ।
 पाविता गविता प्रीति पिपी है जम में निमने छात्र ?
 नहीं है मैं बारी की तछ एक छात्र को भी बरनी यदि
 जान होता है मुझको तो कि विदु गुरु में है मैं यह रही ।
 तब है मैं ता नात्रिध धमुरास की हनिषों पर गुरदास
 समझ में ही हुआ छात्रा मरी क्षमा भी मायू द्विग विधि छात्र ।

बना मकारी मैं यदि का देर । मुझे है निजनी इसकी स्थिति
 गजबता है निजनी यह मुझ स्वयं ही मन प्रीति की हानि ।
 जानता है वह ही जयदीग मुझे इस रण का है जो मेर
 मनाता उा रहे या नहीं मानने निज-परतप में धर ।"

म्यामि से सहमा पति-मुग-कान्ति इस तरह बुझसी-सी पड़ बसी
मूढ़ सपने से ज्यों प्रेम हीन हो बसी हो जब बग्गा-बभी ।

प्रहण करने का धामन मान्य घतिमि को देन मुम माहेम
मधुर कीला-स्वर से पीयूष-वृष्टि-मम कहने मने मुनेम ।
'रचा है किमि मे महिमा-हृदय बया मुचिना-मनेह की गानि
स्वभाविक घोर योग्य है केवि । मुम्हारे निग मुड मे म्यानि ।
बाहता है मैं किमना छो । ग्याय होना ईश्वर मे क्रिया
निया होना पुण्यों को बड़ी हृदय जो मुमको उगने दिया ।

मधुर-महिमी बोमी 'मुरमाय । मुम ता है यह हड़ बिरबाग
कि रगता प्राणिमात्र पर प्रेम मात्र है धर्म घोर परिहाम ।
मगर का होना मेरा प्रमा । मुड करना मैं गिनगी पाव
हय ईर्ष्या-नामक का सग मानती करपावर का धार ।
महा । यदि हाता मट, तो छात्र बिन्व हाता बमा मुग-नेग्र
किम तट्ट किमवर छूने मभी प्रमुग्गनि मुनि मुनेग्र मनेग्र ।

किन्तु म जान क्या किमि मे है ना मुड का रचना ?
क्या निग दिया भाग्य म जग क है यों मग्ना पचना ?
क्यों है काम कोप मानक का रचना जान गिदया ?
क्यों है जग में प्रेम व दोना का प्रमुग बना ?

कोने मुरगनि गय है तुमो ! यह अनुमान
कामन क है प्रेम ही । प्रमाय धनि जान ।
प्रम प्राय है हेतु है जीरन क कचगर
मूढ़ मुग्ग है प्रम-रज मारे दर्जावार ।

प्रेम है धराक धाति के बकोर हृदय को
 प्रेम है पीयूष मछि-मुषा के दीवानों को
 प्रेम है प्रवीण पद्म भूसे पवनों के लिए
 प्रेम पापहारिणी प्रभा है अश-यानों को ।
 प्रेम ही है नाम पतवार भव-सर पार
 होने नाम बीरवती यती मठिमानों को
 ज्ञान का है अथ ध्यान का है ध्येय प्रमत्त
 प्रेम मोटा रूप है बुद्धि बुद्धिमानों को ।

धीर कहते हैं प्रेम ही कि मृष्टि-भुल ही न
 प्रेम धीर हय दोनों प्रहृष्टि प्रधान है
 विरह रचना ही कह रही है पुकार, मान
 प्रेम है प्रहृष्ट योग प्रम-उपादान है ।
 यह, काम नगर, समाज पाहू राज्य—यह
 ही की रचनाएँ हन राज्य की प्रमाण है
 मुठ नहीं मुठ प्रेम ही है धर्म, विमलकों
 बीच इमीतिर प्रेम का प्रमाण रचान है ।"

यही कहते सभी "प्रभा । है नाम समझ के आती
 'प्रेम प्रहृष्ट है'—यह मीठी जानि निखरी मही मुगनी ?
 किन्तु विरह में कहीं प्रेम ने सब बिसर छोड़े है
 एक दिया के वही नाम सबक बिसर करते है !
 इमीतिर धंसा होनी है कि है वही भुल भुल
 सोना ही है प्रेम नशाबिज नग नग्न नग्न भुल ?
 फिर कहते मैं कीन प्रेम के नग्न प्रेम पाता है ?
 प्राय प्राय तो हन नग्न का स्वार्थ नग्न आता है ।

प्रहार विजय

प्रभु ! जहोर तो प्रम-विकस घनि दलार्थ मरते हैं
उसके लिए घनि तक को रवि-गुप्त मसाला करते हैं !
ताकि न रहे दिवस न रहे घनि-विशेष बरकर हो
विशु निमाता है घनि उसपर जब सनह छान मर भी ?”

मुरपति बोले “देखि ! भूमि है बोड़ी इस व्याख्या न
नहीं प्रम-परिमाणा हा मवती विनाम माया न !
बनमान जग के व्यवहारों न है मोहामान
उसे प्रीति कहना तो हागा करना प्रीत्युहाग !
सखा प्रम न कभी निरर्थक गया है न जाना है
जयही-वर तक पर बहु अपना प्रभाव निमाता है !

देखि ! प्रम ही तो दग भूमि पर वस्तुवृत्त
मोतागीर्ष घानियों को भुक्ति का मदग है
विश्व-वपुता क प्रभियों का है प्रमाण दरम
मलि-योग घानिया का निदा प्रदण है !
निरा मुग-भानियों को मोह्य गिणु है विषेण
राम घानियों को बधराता का मग है
प्रेम का है प्यार जगदीश क गुरारियों के
दम निविहार बगानार मग है !

रात्री बानी “तब जापापि है ही क्या प्रभु ! जय है ?
विमने होते है न कलक दम मुगुमाता मग म ?

बोन दग मग मग ! रज मग न घनि न मग
घानि विरोधी भाव-मुग का है मग भाव दाम !

किन्तु प्रेम प्राधान्य पर, इनका कुछ भी भार
पड़ना सम्भव है नहीं यदि जन सके विचार ।

ही हैं कष्टक कुसुम प्रकृत दोनों ही जग में राखी
प्रकृति देवि ही हैं बननी रज-तम-सबही जगजानी ।
किन्तु ध्येय है कांटों का कुसुमों का रसगु करना
न कि पुष्प के एवं पर के जीवन में भय भरना !
इसी तरह रज-तम हैं सत के रत्नसौन्दर्य के साधन
यों बठरायि बठर में रखकर कटौती है रस-भावन ।

निजु भूषण हम साधन का साध्य बना लेते हैं
संयत न कर विवृत्तियों का निज उत्तेजन देते हैं ।

आज नहीं है साध-वसन-जन तन रसा के साधन
प्रसुत तन का ध्येय बन गया है इनका आराधन ।
पिता में भी मिल्य हमें है आता यही बताया
लक्ष्य हमारा है गंघह करना यह जरूर माया ।
नहीं बनाया आता ध्वनि-विरह का हित-मन्थन
निमते है परबीज परपर हम सबको बन दगा ।

ईर्ष्यामिष्ट है आज कर रहे कुसुम पवन हमारा-
ईर्ष्यामिष्ट है नहीं प्रेम को निनजा कहीं सहारा ।

हम धन्य गा नाम आप आदिक को भड़काने है
पा पी माइक इत्य बनेहा भगदा कैवले है ।
बड़ा घनाशयक व्यय हम ईश्वर-ईश्वर को करने है-
धर्म भूष छोड़ो की धन-धी घटना पर करने है ।
दिर करते है पुत्र प्रेम है दासों प्रान्न अन्न में-
या भति है ता ईश्वर की है मुक्ति-निदान उन्नि में ।

प्रस्ताव विषय

आवश्यकता-यह विधि से विधि तक साधा पाठा है-
 धीरे मुक्त-अम बही साध रागी को पहुँचाता है !
 बिजु घमावरक धून से भी होता स्वास्थ्य विहृत है
 मही नियम अन्तर-बाहर जग पर सर्वत्र घटित है !
 यदि हम करें सभी का आवश्यकता पर उपयोग
 तो न दुःख हों, न ही हँस का रहे जगत में रोम !
 फिर है प्रकृत बही विनये जम कभी नहीं उबतागा
 धीरे शीत है जिसको हो नित वसह-काण्ड हो जाता ?

एक बात है धीरे देखने में फिर ईशिक घाटी
 सभी प्राण्य मोमा से है रवि जस्दी ही घर बाटी !
 फिर उनमें पैदा करनी कहती है निज सुवनता
 तब रवि विर रहने की हो सक्ती है दूर कठिनता !
 क्या हमका यह धर्म नहीं है कि है धूम धुमने में ?
 धारम र्देव के तथा प्रेम के पुण्ड-मराण धुमने में ?

यदि भौतिक धन भाग ही हों धारमा क जय
 तो न धाम्य हों धाममा बसो बाहर निज र्देव ?

राती बोली 'बिजु देर ! यदि धीरे मभी है मायक-
 माय स्वार्थ हन-माह्वर्न ही है स्वामाधिक जीवन !
 प्रमद बही है मूर्च्छि प्रम की फिर बरा कहा नहीं है ?
 क्या न धात्र लमुनाय जग में भी यह व्यक्त बही है ?
 निज स्वभाव को क्या सब सर्वका धून जाने है ?
 बने मुपा-जगह भी अमरन् ! पावक बग्याने है ?"

मुग्धति बाने निरचय हो है यदि भी नहीं बदला-
 यद्वि प्रकृत बही है या वरन् ? जग का धारमा !

धनवा जो लक्ष्म-भ्रष्ट सहीके धर्म परम पोषक है
 सब बातों में स्वास्थ्य-सुखी की उन्नति का चेतक है !
 तबपि धनूप्य धनपूर्ण जीवन है आध्यात्मिक विज्ञान—
 रहता है उसके संसर्ग में केवल बीज समान !
 फिर भी यदि उसको न सिगार्ए हन कुछ निज व्यापाद
 तो निश्चय न करेगा वह जग में ऐसे संहार !

विष्णु धामुण्डस कुस सिद्धा मिल उसके जीवन में
 कर बैठे हैं प्रकृति-विरोधी परिवर्तन वक्ष्यन में !
 विशेषतः आध्यात्मिक जीवन में मौलिक अज्ञान
 रहता है जगकी कृति-गति नति सब ही पर प्राधान्य !
 और विद्वति-अज्ञान प्रकृति है दुष्क-मोह समान
 एक दूसरे का स्वभावतः करते हैं धातान !
 अतः न हो यदि बाधा तो वे निज गुण दिखानाते हैं
 बिज को मुखा मुखा को बिज दुग का गुण बतलाते हैं !

रानी कहने लगी "कीन है तब प्रभु ! वह धनपपी
 जिनकी कृति से धात है रग बार विद्वान की धापी ?
 क्या हम पुन में कोई लगा है ही नहीं गमाज
 जो हम मशरफ पर लन गमार्त सिगाता धात्र ?
 या हम लमात्र में ही रखी नहीं सवय पर हृष्टि ?
 और उगीक कारण मारी अटक रही है कृष्टि ?

स्नानि का धनुषध करन हृष्ट, बजा गुणपति के धिर मत्र दिष्ट
 'पिता या मवता मुक्तो धार कीन है बापी दगक निग !
 दनि ! हां गुर या धमुर धनुष गभी है एक बंस क धनि
 पुनर बरनी है बरग उग आध्यात्म तप मौलिक मति !

यह वेगे सब ही समुदाय मिले जाने हैं जो मन्दिरे-
हृदय में होगा जिसके सतत है क्या प्रथम भाव उन्नत !

समझने की है जिनमें सक्ति स्वयंकों के निर्दिष्ट परिणाम
जिन्हें है ही बिबि ने दुमम्प बुद्धि-म्यथनायासिमना सनाम !
सभी है यथनि छोटी देवि ! कम के नियमों के अनुसार,
तरनि करना होया न्नीवार कि मुम्पार वा सर्वाधिक भार !
धष्टनम प्राणिमप का प्रमुन ध्याति हाव न वा मय प्रम
कि मैं ही बन सनाया पादों पाठा लगनक दुपाम !

विष्णु मैं रुद्धि-पादा म जेमा देग हा नही मवा यह बूझ
पाव कजर ही जुनगा रहा बट रनाकर के भी बूझ !
मुनार प्रया ध्येय का मनुज रुद्धि के बनन है जब दाग
नाम पर सब इयम के मुड पय का जान ही है मना !

विष्णु यह हम गगन है देवि ! सोम रा मरी धनरुष्टि
स्वप्न-मम है हो गई जिनष्ट घात यह घब उड वा गुरु-भूटि !
घात मुरगम के पुनरुत्थार-बाज वा है उग्रजम हो गुता
ममक मो गुरु-ममात्र मे गिर दुःख का भी डालम हो गुता !
निदा वा निज आता म मय दाग ही मैंन यह नदाम
घार हाता धर्मिम भी घरी जनी ता है गुरुगम का काम !

घात मे मुरगम मुरगुर लाइ करन मुड बना पर राग
मुड प्रतिगोध, शिखर लेखन श्रवण हाव डवो मयार !
प्रहति ननि वृत्ति विचार मयहार कभी घात न लोरदे हू
हुगमके उसार मनुसार जमा को भी न लोहा हू
मभीपर रगत प्रम घात मर्मा का बरने मय उरवार
पिय दारि वा बरन मय घात हाव न मुनन का मार !

धनुर-महिषी यद्यद् हो उठी बहु जमी मित्रों से यस्यथा;
 दवा-बारिह से मानो निमल मुखा की पड़ने लगीं पुहार !
 हो जमी उसकी बासी धवल छटा हृद मायों का लुप्तान-
 पूर्ण राशि देत सिधु-हृद मन्त्रा तरंगों का हो ज्यों यमसान !
 अन्त ज्यों-ज्यों त्रिज बाबादेव रोकर, वह धडा के साज-
 सज कर फिर मुरेय के चरण लवी करने स्तुति जोड़े हाव !

‘अन्त देव ! हे त्याग धापका अन्त धापकी प्रीति-
 अन्त धापकी धर्म-वीरता अन्त निष्कण्ट मीति !
 प्रभो ! आरको छोड़ धीर है भी जिसमें यह शक्ति
 जो सारे जग को दिलाता है किसी कहते स्थिति !
 धीर कीन है जिसपर मुन कर सजते हैं धर्मिमान
 जो कर उनके प्राप्त रिपु के हृदयों में भी सम्मान !
 जो है प्रतिघातों का बरसा प्रम धीर जानों से
 जो करके मनीषि को कुठित करने बलिदानों से
 जिसका नाम-रमराग हृदय में मुर उद्यान शिलाए
 सेवा समता स्वाग भाव की वन-जादिली बहाए
 जो कुम्भिया मन्त्रों-गव में राम कृपा-कृष्टि बरसाए
 जिसपर जाय उम धीर प्रेम-नाभ के धन उमड़ाए !

यह बलिदान धारवा प्रभु ! जिसमें सब मुन ताएया
 निरक्षय फिर भूतन वर ध्वज एतमुन वा कहछया !
 फिर हम मन्त्र के वन-वन वर गुम्हर भूत निमेंने
 फिर भूतन के भूत-विपुले तारे हृदय निमेंने !
 फिर वन-वन में एक बार लम्बा-बाहिल दागली !
 सिद्ध-बागुना की गलीर फिर घर घर सहगाम्पी !”

प्रह्लाद विजय

गुरुराज बोले 'देवि ! नहीं है इनमें कुछ भी गप्प
 बाज किया है मैंने तो पापम धरना कमल !
 इनमें दिन तक नहीं किया इस ही का है परिचाय
 कोन बड़े बरों हुई ब्रह्म यह विमला या यह धाम ?'

राजी बोली 'देव ! घात्र नम पाग भरे मद-मर के
 फिलने हैं जो करने हो इनका भी रिदित प्रहर में ?
 बिलने हैं बिनको हा निद्र कमल धम धम के व्यास ?
 या घर हैं इन भाति धर्म वर, नम नम भंडव माग ?

बिनु हैर ! होरेग बिम रिधि धमुरों का उद्वार
 बिनके राग्य-भोज मधुगुह है जग का बीजन धार ?
 जब तक उनके निगम मधुबिज भाग उगाध बालों !
 तब तक गमन नहीं मानि के गुप्त निम नम में धाम !

गुरुराज बहने लगे 'घोर क्या मैं बनना मचना हूँ
 मार्ग लक्ष ही है बिनको मैं स्वयम् धाम करना ? !
 यदि मांभाग्रधार म धमुराजि दुस्वारा बाने
 घोर घाव ही मधु-श्रेम के निमनों का कनकाने !
 हा निरक्षर ही जवन मो हाग्य जग का बस्त्राग्य
 बंधे भी हा मेरा ही है जग में मन-नयन !'

राजी बोली 'बिने प्रभु ! है इनमें एम्बार ?
 बानना का स्थान है ऐसा न कि धारदार !

निरक्षर ही बर हाथ निज मा मध्य कराना
 धरता बर के मधुगुह निज निर-हृदय भुजारा

पशुवन भय भी पावन का आधार बनाता
भय बस ही भयानकारी के मुख-मण्डल बना

बोनों ही हैं घोरतम पाप प्राप्तिषों के निम्न;
साक्षन हैं नश्यता के दुरभिमानियों के निम्न !

घोर घातका निदधय भी अधिमानीय है
क्याकि है घातक विरह में बलनीय है
उन ही का आधार देनकर जब पतता है
उन ही से सद्भावों को पापण मिथता है ।

विदग्ध-वृद्ध तो मुरगुरी उसका मूल स्थान है
रस का अनुवन वृद्ध का जीवन-नियम विधान है ।

विदु प्रभा कर-अमुर भूष में भरे हुए हैं,
घोर विदुति उस तक जग में घिरे हुए हैं
नही मुरा के दिव्य आधार ज्ञान उग है
न ही गह्वरि-निजा-भाषन प्राप्त उग है ।

मृग अहिना-धर्म के पाप सारे विग ठरह ?
कर हम की बात ही बता चमके विग ठरह ?

घोर न सब तक सभी अहिना का अनागत
प्रवर्णन को मुख्य धर्म के स्वतन्त्र विधान
मंदह का न मन्दर सभी गहरा पगह
तब न निज-नर, अयम-भर के भिर भिन्न

जब तक हम का हृति में घर सब हुआ धर्म ही
रहना न कर पाता ही घोर न भिन्न धर्म ही ।

घा' गाव ही रस घना की रस घनान में
घोर विदुति अहिना अनर जीवन विधान में

प्रहार विषय

तेजा करिण धाम दि जा के भी बेचारे
उठा गळे कुछ साम खाम से देव ! मुझारे !

तभी घायल यह भुगद निश्चय हावेगा लज्ज
तभी जिन्ह में बहेगी धाँस-मुषा-भारा विषम !

मुरझि सप बहने 'मनी ! यह लज्ज है ममार के
है धिन्धला नर, गुर, घमुर प्रदह के छाचार में !
प्रदेक है मनुष्य गदगुगु जान के आगार में !
है बटि वहीं कुछ बापुस-मद य वहीं प्यारार में !

दिर भी बिबिन्न नर मुझ पर दून-सीता
मारी भिन एक उरजग ही बनानी है
गत जानु बचनार पात-गुनर का प्रहृति
आदि भिन हा ता नम निर का रबानी है !
दमी भीति छवमाही गृहि का है नर आरा
अथवा रिकान अति भी दही निगानी है-
जद मृष्टि में भी तमादुनी बल रज और
नर मन्दावस्था प्राप्तिन पारि रानी है !

है जग न गर्व न ही बुझे जो का देव
रागे मुपना-अप्य भी है बल्लभ नि-देव !

धम्मर रिम मरिद ने के बिबिन्न धम
विम्वि विम्व मरिद बल नर दून बारे है
अति नर बनु रिम बल नर नर नर
नेव धम्म नर नर नर नर निगने है !

कोई ऋतु है तो कोई मयूर कर्मते तीरछ
कोई बंध-बक बोई दरेछ, कोई काले है
तो भी है सभी ये एक बूनरे के पोषणार्थ
मारे देह ही की शक्ति को बढाने वाले है ।

उसी भाँति भेर तो रहे हैं रहेंगे भी सब
सम्भव नहीं कि पिछ काक एक राव मारें ।
मूर्ख से सबे मुषीसु-नीकर, पछाहू रवि
रश्मि सेव्य लिए रम रंघों की सब मजार्छे ।
बाँझनीय मान यही है कि लक्ष ज्येष्ठ मान
कैसे सारे भेन भाव रंगों में बरस जाय ?
कैसे पातलानुमार सानुबुस साधनों का
कर उदयोम सभी बिबर में बस्यत साण ?

किन्तु माय ही मुरों में न हावा समुरों का पाण
गुर कर मारते नहीं समुराण का जीवन-निर्माण ।
कारण एना प्राय नव ही वर्षों में वन भ्रम है
भिन्न अन्ध वर्षों से उनका प्रवृत्ति विवृति अनुक्रम है ।
मान आचरण मवर्गीय के ही है उनका साम्य
मवर्गीय आचरण मानन ही वा है वे बाध्य ।

मान मुसिलिन गवात्र ही हम अन्धमर्दि का धून
मंजह करने है जग-वन के प्रति लक्ष में दुग-गुग ।
वरन्त समुरों में पिछा का है नयन रिम्नार-
मान बाधविक जीवन ही है उनका जीवन-भार !
अन समुराण में ही वेन अब कोई गुर हावा
नभी समुर हुर्यों में वेन फिर वर्षादूर हावा ।

प्रह्लाद विजय

तभी प्रभुरगण वर्तमान पातक सब को छोड़ने

तभी हमारे हम भी हम पुछा मे मुग माफ़िये ।

प्रभुर-महिनि बोली 'यह कम देव ! गन्धर्विन होया ?

पश्चिम मे भी सम्मेष है क्या दिनकर उरियन होया ?

क्या कज्जला मे भी उज्ज्वलता पदा हो गवनी है ?

समा भी क्या काँटों की व्याममना सो मवनी है ?

सर्व वही है हा मवना उज्जर नहीं 'म दाव का ?

हार नहीं है वही काटने वाला हमने मव का !

गुरपनि कहते मने 'नहीं है धानव गुप्त भी होना

घोर जगह क्यों, यही, देवि ! धनका ही दगो ना ?

भेद बने है गुण दाया मे उम ही म विग्न है

भमवग इहो प्रहृन निमजन ये उमपाँ रटा है !

धागिर तम मे ग ही ना निवार प्ररग्न होना ?

कुलिग पट्ट मे मे ही ता पत्र बिगिन जाता है !

जब हा मवनी है प्रभुरा संभेद मुहारे जगी

तो हा मवनी नहीं मवा क्या गन्धनि उमवी लेमी ?

घोर मुझे ठा लेना मानिा लेना है वि मुहारे—

मनों ही मे प्रभुरगणों के पत्र बटोले माते !

मन्त्रवन् है यही निरा के वनों की दूम इला

वि हम सर्व को गुप्त ही दो हम प्रम सर्व की दीला !

घोर मुझ पाया है गुप्त धरमर न वनी लीलागी

गमर पत्र वग ध्व-सर्व मे वभी न मुग माफ़ोगी !

तभी बोली 'दमा देव ! धरमा क्या कर मवनी है ?

भीटी क्या रजवग पुन पुनकर गमुह मर मवनी है ?

घमुर धरि सँ इतना ही मान करा लुप्त गयो उम्हें यह भाग-
तदपि निःपय समझा देखि । कि दमन होगा लाभ महान ।

रानी करने लगी बिन्नु है देख ! नहीं यह सम्भव
कि कर गछू मैं घमुरों के दन मदयाचों का उद्भव ।
प्राप्त नहीं है घमुरों के यह पद हम प्रबलाचों को
भो भेना है गुना दोन सबही वृत्ति इच्छाया को ।

प्राप्त नाम न हम तो वास्तव में बेची जाना है
दाभी है सबमुच ही बगे वृत्तिगी वदमानी है ।
यन के प्राप्त पाइती कर लेना है गाठ बरम वा-
बही पोइती पाता है गति बरम भाग बरम का ।
उगदर निगमना जाना है कि है विषय मुन पय
इन्द्रिय-गगन का वृत्ति मान है मरिणाया का बरम ।

बचमरीन हमारे पनि ० मर बुद्धि बरन के
बिन्नु पनिग हा दाभी है हम मूढ भी विरन म ।
हम उनका बरन-गापन है के है रीन दलीने
बर गवनी है हम न हग दया पर गदन भी गीने ।

मुन रोमाच हा उग मुरली का निव-निव बर बा-
'हो मरन है क्या घमुरों के जन दने भी भोने ?
देहि ! गुना-बर जा बयाय बर के बर बरहा ?
के बिन्नु-दाता दाम नमिमी बनवर दुन बा- है ।

बयाय पर दाम मर भी है दाव-मर बा-
गाम मर नर नहीं गुना बयाय का बा- ?
त्रिम मरन म होता है मरिणाया का दामान
घदरा बरना बा- है के दावी-दाम-मरन

नित्य दुर्गुणाधिक मूल्य जुन-जुन बन को स्वच्छ बनाना
हर पीपे की ध्वनि कर, पर्वत बाद पहुँचाना
नहीं किसीकी स्वतंत्रता साक्षादिक दिने देना
सबको बना स्वावलम्बी एक विरे हुए कम सेना !
यहा ! जो भूपति प्रजाजनों से अधिक मुकी रहता है
वह कैसे धन का पितु वह सज्जता या कहता है ?”

रानी बापी “किन्तु उन्हें होता है क्या यह जान ?
हो भी कठे मृग-मय ही तो है इस नय की गान ?
राज्य स्वयं जब दुराचार, धन-जन को धनता है
तब धन का भय प्रभु ! जनपद में भी हट जाता है ।
किर भिन्नता हो बना लक्ष्य ही भौतिक भौत-विनाश
उनको तों पर जो परवरा रगते ही हा क्यों जान ?”

भूपति बोले ‘तबपि नारियों पर ही है यह भार
कि वे करें सर्वज्ञ समाकर भी धनता उठार !
जग में सबसे निज वीरों ही न बनना पड़ता है
बिना द्विजा कर मुग न बख्तर भी कब उड़ता है ?
बहिर्नाई का दग भावना है वापर का नाम
धन ध्वनि करने है उनमें जीवन भर गंवाय !

किर अब तक न बने महिमाई शत्रु मृत क्षति जान
तब तक हो गवानी है उनका गमनि कब पुनरागत ?
उनका है वर्तव्य स्वतंत्र की धर्म-आर्ष पर माना
धीर न अब तक भुपते उनका जीवन नार बनाना ।
मुग रता है नहीं देर ! वागद व निज कर मान
कर्म पात्र भी जीवन शक्ति है जग व नारि गवान ?

घर भी बूढ़ का पाम्पि-मीक्य है सभी तुम्हारे कर में-
 दम बल का उपयोग युक्ति से करके घपने घर में
 तुम पुरुषों को बिगा बना सजती हा मर करन को
 कर सजती हो तत्पर उनको घम घम भरन का !
 देख ! पारि जा कुमार में पति का जान लेनी है
 वह निश्चय उनका घावे घप घपन निर लेनी है ।

बारण्य वह सहस्रमिति है घनलभ भार है उपपर
 कि वह बने पट्याग बही हा रवासी जही मुगल पर ।
 यदि यदि घम-मार्ग तब है तो घनलभ्यार कर दना
 जब तक तब न कुपय बिगो भी बनि में भाम न मना !
 यदि वह मयन यह न करे तो पालमी घप-म-
 कम-नियम है—महपावी भी पाना है मम-दण्ड ।

घोर भय ही नि भ्राता के हा या पति के घाभिन-
 पर घाभिन रहना भी तो है करना घप ही मबिन !
 जब है हरि ने दिल मुगल भी लक्ष-मम कर-नद जान
 तब पर घाभिन हा भीना कर मेना है घप-मान !
 देख ! पति छन भा या पर निर लेना मना है
 उन बुझान को निर वह पामु ममु नन पना है ।

बापी घाभिन न हाता बरा प्रभु ! दम दमका पार ?
 बनिता व निरद निता देन है विम विनि घात ?

मुरगनि हैमकर बापे "घा हो गा है भागा भूत
 म-द-माय मे वन दम माय ममो है अनिपुण !
 यदि मुक्ति है म-द-माय म-द-माय हा पानिपुण हा
 तो बरा उनके पालन म म-दी निर मुगल-माय म-द-माय ?

यह भी ब्रह्म का साम्प्रदायिक है नहीं तुम्हारे कर में
हम बन का उपयोग मुक्ति से करके अपने कर में
तुम पुरखों को बिना बना सकनी हो मर करन का
कर सकनी हो तत्पर उगनी धम धर्म करने का !
देख ! नारि का क्रमान में पनि को जान देना है
बहु निश्चय उमर कापे अप अपने मिर मेरी है !

चारण बहु महर्षिनिधि है धरण्य भार है उमर,
कि बहु करे गायन बही हा स्वामी जही मुपय पर ।
यनि पति धर्म-भाग ठह देता समझाया कर देना
यह नर ठह न पुनरि किमी भी पनि मे भाग न मना !
यदि वह भयव्य यत्र न करे तो पाणी अप-गण
कर्म-निधम है—महर्षयो भी पाता है मय-व्यस ।

और बन ही निज भाग के हा या पति के धाधिन
पर धाधिन रहना भी तो है करना अप ही नबिन ।
जब है हरि मे निज मुने भी मय-मय कर-गण साध
तब पर-धाधिन हा भीना पर मना है अप गान ।
देख ! नारि टन भी जा कर निर बेटा गाना है
उग बुझन को दिय बं पासु गनु मय बना है !”

बामी महर्षि “न हाग वरा अनु । इमय हमको वा ?
नित्यन व रिन्द गिला २१ है विम विवि वा ?”

मुर्खनि हैनकर जाने “न ही मो है भाग्य जल
कई-गाय म बन हम प्राय बनने है अनिष्टम ।
बहि मुर्खनि कई-गण मय मना ही पाणि २१ हावे
गो वरा उमके पावन म गाना निर मुन-मुन गावे ?

देव ! हृदयिकर हो समाज को यह है स्पष्ट नीति-
धर्म कहाती है समाज की चारण-कर्मी-नीति ।
फिर है मूल परस्पर के सब सम्बन्धों का धर्म
प्रति त्याग पति स्वधर्म को यदि करने लगे धर्म-
तो परती का है हो बाता यह कर्तव्य मिथ्या
कि त्याग पति-सहयोग करे निर्मल निज धार्मिक कार्य ।
धन्य धन्यवा मेह रहेवा क्या बासी-बहिणी में ?
क्या प्रसर होगा व्यवस्थापिणि एवं कुल रमणी में ?

हूँ विप्रेक्ष्य सोचारिक बस यथार्थि ब्रह्म में भरना
या न अनुसरण पति का धर्म-विहित कार्यों में करना
निज शृंगार-विभास साधनों पर उत्साह भवाना
कठिनाई को देख भीत हो स्वयम् पूरक रह जाना
इप विषय पति के विरुद्ध अठ-धर्यवर्गों का रचना
आदि पाप है और चाहिए इनसे सबको बचना ।”

बोली महिषि देव ! तब तो जो बिन प्रभुर बालार्थ,
प्रेम-विषय हो उपपत्ती बन करती है सेवाएँ
तब बेटी है ब्रह्म-समाज सम्पत्ति के सब अधिकार
दिनती है पति का अन्धानुगमन ही जीवन-साध
एवं पीछे सन्तति-सह गिन भी जाती है बासी
जनकी ये कतिनी भी होंगी अन्त धर्मों की फाँसी ?

मुन मुरेज कुछ अस्थिर, एवं होकर फिर धम्मीर;
बोले निश्चय देवि । वे सभी कृति हैं पाप कुटीर ।
धीर देवि ! ऐसे कर्यों का प्रेम गाम बलवाना
तो है पावन प्रम-नाम पर चार कर्मक जगाना ।

प्रज्ञाद विग्रह

गच्छा प्रम स्वाभिमानी प्राणी में ही होता है
 घोर स्वाभिमानी न कभी निज बध-मान होता है ।
 वह करता है आत्मगमर्दण आत्मगमर्दण ही का
 तब बनि देता है गर्वन मर्दस्वार्पण ही को ।

अथम स्यन्ति जो स्वयं नहीं करता है कुछ भी त्याग
 उनके निज दाम-मर लेता है लेता दुर्माय ।
 दवि ! दवा है ईश्वर ने जारी की पुण्य-ममान
 अन् भीष वह लेता है करता हरि का अमान ।
 आ गयी विमोहकन है निज पद पर यह लोग लपानी
 निश्चय है उन अथम धनि-नास्ति वह दुर्गति ही पारी ।

मरी गयी हो गई दवि ! तुम प्रेमपयी हम स्वयं
 नि इन प्रमकन जनायो जय में वह जालि अन्वय ।
 प्रगुन है हम हेतु दिया यह सुर-जन महिमाओं को
 नि के मन्त्र रोचें गुरों की अनुबिन्ध वधुताओं को ।
 घोर मिताए उगे प्रम ने मरने मिलकर रहना
 दर-नीरज में नहीं घोर की ग्या म दुग महता ।
 घा ३१ दिला के ना हाता तुमको उदम करना
 घोर अक्षर हम स्वयं प्रभातन हाता वह पद अन्वय ।

रहा प्रम माते अगुओं का ना उनका उदात्त
 नि ना-नव ॥ प्रम-नाय का म्निग प्रम-प्रमात-
 बर्मान है मन्त्र दुष्टाते नि-तिग उम बनाता
 अन्नी अर्थ-मुका गयन दवि भरकर उग दिताना ।
 मन्त्र नाम होयी तुम है यह धार्मिक-हवाग
 धार्मिक-मुक्त का अन्विष्टनी होना दुम दुष्टाता ।

देन ! हाथिकर हो समाज को यह है स्पष्ट अनीति-
 धर्म कहाती है समाज की धारण-कर्त्री-नीति !
 फिर है मूल परस्पर के सब सम्बन्धों का धर्म
 अतः त्याग पति स्वधर्म को यहि करने लगे प्रकर्म
 तो पत्नी का है हो जाता यह कर्तव्य निषार्थ
 कि त्याग पति-सहयोग करे निर्मल निज धार्मिक कार्य !
 भसा धन्यवा भेद रहेगा क्या बासी-गृहिणी में ?
 क्या अन्तर होगा व्यवसायिणि एवं कुल रमणी में ?

हैं विप्रेक्षा भोजारिक बस अस्मानि इह में भरना
 या न अनुसरण पति का धर्म-विहित कार्यों में करना
 निज शुभार विवास धावनों पर खलात मथाना
 कठिनाई को देख भीत हो स्वयम् पूषक रह जाना
 हय विवश पति के विरुद्ध घट-पड्यर्थों का रचना
 आदि पाप है और चाहिए इनसे सबको बचना !

बोली महिषि "देव ! तब तो जो भीन धमुर बालाएँ,
 प्रेम-विवश हो उपपत्नी बन करती हैं सेवाएँ
 तब देती हैं गृह-समाज सम्पत्ति के सब धनिकार
 गिनती है पति का अन्धानुसमन ही जीवन-साध
 एवं पीछे सम्पत्ति-गह गिन भी जाती है बासी
 सनकी ये कृतिवाँ भी होंगी अन्त धनों की फाँसी ?"

मुन सुरेश्वर कुछ घबिहर, एवं होकर फिर धम्नीर
 बोले निरुधम बनि ! ये सत्री कृति हैं पाप कुटीर !
 और देखि ! ऐस कस्यों का प्रेम नाम बतलाना
 तो है धावन प्रेम-नाम पर बार कर्मक भवामा !

गच्छा प्रम स्वाभिमानो प्राणी मे ही होता है
घोर स्वाभिमानो न कभी निज धर्म-मान होता है !
बहु करता है आत्ममर्त्यण आत्ममर्त्यण ही को
तब बलि देता है गर्वित मर्त्यमर्त्यण ही को !

अथर्व धर्मि ओ स्वर्ग नहीं करता है कुछ भी त्याग
उसके लिए स्वर्ग-द्वेष है सेवा है सेवा दुर्भाग्य !
देवि ! सेवा है ईश्वर न मारी को पुण्य-मान
अन नीच वह सेवा है करना हरि का धर्ममान !
जा रही विमोहक है निज वह पर वह शत्रु तपानी
निश्चय है उग अथर्व धर्मि-अहिम वह दुर्भाग्य ही पानी !

मरी रही हो गई देवि ! कुछ प्रमथपी इस धर्म
नि इस प्रेमका बीनाओ उग में वह आनि-धर्म !
प्रभुन है शत्रु है दुःखिया यह मुर-अन महिनाओं को
नि है मनुष्य रोहो मुरों की अनुविन वसुनाओं को !
घोर निगाहें उगे प्रम मे सबसे बिलकर रहता
पर-नीचक मे नहीं घोर की रता में दुःख महता !
अन शत्रु दिसा मे ना शत्रु मुमको उदय करना
घोर मनुष्य इन धर्म प्रकाशक शत्रु वह वय करता !

रहा प्रम मारे धर्मों का भी उनका उदयक
नि-अन मे प्रम-अन का निज प्रकाश प्रकाश
अनमान है मनुष्य मुरारे निज प्रकाश उग बनाना
अनी धर्म-मुखा अथर्व धर्मि भरकर उग रिताता !
मनुष्य अथर्व हाथी मुर है यह धर्मि-अन हकाश
नि-अन का धर्मि-अन शत्रु मुर मुरमना !

देवि ! पूज्य नारद कुछ क्षण में ही घागे बाध हैं-
 वह ही तुम्हें स्वहृद् पङ्कजाने का जाने वाले हैं !
 प्रसन्न हो तुम उनसे मे भक्ति-योग की बीजा-
 बह कर सकते हैं सब सखाधों की करम समीक्षा !
 ईश्वर कहे, तुम्हारे इच्छा-वन में ऋतुपति धाएँ;
 फिर इस असुर-धरन्व यध्य सत्प्रीति-समीर बहाएँ !

फिर इस होप-दग्ध जय में तुल्य का समुद्र बहाराए;
 फिर, जमती पर बल्लु-भाब की विमल चन्द्रिका धाएँ !
 फिर, मरुजल झुलित कुलों स्मित पुणों से भर बाएँ;
 फिर कोटिल 'बसुबल कृदुम्बकम्' की रागिनी सुनाएँ !
 फिर बस की पूजा चठकर हो सरय न्याय की अर्धा
 फिर बर-बर में स्वार्थ छोड़ हो स्वच्छि-मक्ति की अर्धा !

कड़कर, मुद मुरपति उठे घरसाये सस्नास'
 रानी भी मे करन-रज धाई निब धाबास !

